८

॥ श्रीसीताकान्तो विजयतेतराम् ॥

नमो भगवते बोधायनाय । श्रीरामानन्दाचार्याय नमः

श्रीरामानन्दपीठापरपर्यायश्रीसुरसुरानन्दद्वारपीठसंस्थापक-

जगद्‌गुरुस्वामिश्रीसुरसुरानन्दाचार्य-

प्रणीतः

श्रीमैथिलीमहिमस्तवः

व्याकरणवेदान्ततीर्थ पंडितराजेश्वरमहान्त-

श्रीकपिलदेवाचार्यप्रणीता

श्रीमैथिलीमहिमप्रभाभाषाटीकासहितः

प्रकाशकः-

व्याकरणवेदान्ततीर्थ पण्डितराजेश्वर महान्त

श्रीकपिलदेवाचार्यजी महाराज

बोधायन विद्यालय प्रकाशन विभाग

मोटा श्रीरामजी मन्दिर

प्रथमावृत्तिः पालनपुर (बनासकांठा) मूल्य

१००० १)

यदायदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।। (गीता)

रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले
(वैश्वा० स०)

जगद्गुरु-श्रीमदनुभवानन्दाचार्याष्टकम् ।

प्रणेता महान्त-पण्डितराजेश्वर-श्रीकपिलदेवाचार्यः
पालनपुरम्. राममन्दिरम् ।

कान्त्या कन्दर्पदर्पं प्रखरकरमदं स्वप्रतापेन सिन्धो-
र्गाम्भीर्येणातिगर्वं भुवनसितकृता कीर्तिसंघेन चन्द्रम् ।
क्षोणीं क्षान्त्या जिगायामलसुगुणगणाम्भोधिरित्थं त्रिलोकीं
श्रीमान् पायाद्विजेता स गुरुरनुभवाचार्य आर्यद्रुहां यः ॥१॥

युक्तं हृद्यानवद्यं द्रुतदलितमहामायिकाखर्वगर्वाद्
भावानन्दाद् गुरोः स्वादमृतमयतनोः सर्ववेदैकसारम् ।
अध्यैष्टानन्दभाष्यं षडवयवयुतं वेदसंघं च धीमान्
श्रीमान् पायाद्विजेता स गुरुरनुभवाचर्यं आर्यद्रुहां यः ॥२॥

स्याच्चेद्वह्निः क्व धूमो ? ज्वलयति न कथं नीरसं काननं वा
भास्वान् ? नास्तं प्रयातीति तदपरमहो काल एव प्रमूढः ?
सोऽसौ धर्मस्य गोप्ता जयति भवजयी कोप्यबोधीति केन
श्रीमान् पायाद्विजेता स गुरुरनुभवाचार्यं आर्यद्रुहां यः ॥३॥

आज्ञामादाय धीरः सुमतियतिपतेर्दिग्जयाय प्रतस्थे
तत्रैकैकं विजित्य प्रतिभटसमितौ निर्भयः सम्प्रसीदन् ।
चञ्चच्चारूरुमुक्ता वनजकरिघटा किं मुदेनोदरैः स्यात्
श्रीमान् पायाद्विजेता स गुरुरनुभवाचार्य आर्यद्रुहां यः ॥४॥

यस्मिन् स्नेहाद् गुरूणां गुणगणगरिमस्वादराद् बान्धवानां
प्राताक्ष्याच्चेतरेषां विषमशरशरोद्वेगदुःखाद्वधूनाम् ।
आश्चर्यान्निर्जराणां विपुलभयभराद्वादिनां चक्षुरेति
श्रीमान् पायाद्विजेता स गुरुरनुभवाचार्य आर्यद्रुहां यः ॥५॥

शिक्षापीयूषपूरं स्रवति जगति यद्वारिदे ज्ञानशस्यं
ब्रह्माण्डाखण्डभाण्डं निखिलमपि तदा पूरयन्नेधते स्म ।
लोका न स्तोकशोका दधति सुपरमानन्दसायुज्यलक्ष्मीं
श्रीमान् पायाद्विजेता स गुरुरनुभवाचार्य आर्यद्रुहां यः ॥६॥

ध्येयः श्रीरामचन्द्रो हि सकलविदचिद्देहकः सोऽन्तरात्मा
सेयं नामैव तस्य श्रुतिनिकरनुतं प्राप्यते येन मोक्षः ।
यं तद्बोधि सर्वं सुकरुणहृदयः शिक्षणं चादिदेश
श्रीमान् पायाद्विजेता स गुरुरनुभवाचार्य आर्यद्रुहां यः ॥७॥

स्वच्छश्लोकेन भूमिं सह समतरन्साकमुद्वर्धमानः
प्रीत्या श्रीवैष्णवानां रघुपतिवचसा साधर्मध्यत्ययानम् ।
साकेतं सिद्धयुपेत सुजनपरिवृतो भूरिधामा जगाम
श्रीमान् पायाद्विजेता स गुरुरनुभवाचार्य आर्यद्रुहां यः ॥८॥

श्रीमत्कपिलदेवेन पण्डितराजेन निर्मितम् ।
भूयादनुभवानन्दस्तोत्रं श्रेयोविधायकम् ॥

आचार्य सम्राट–भारतोद्धारक–आनन्दभाष्यकार
श्री १११०८ श्री रामानन्दाचार्यजी यतिराज
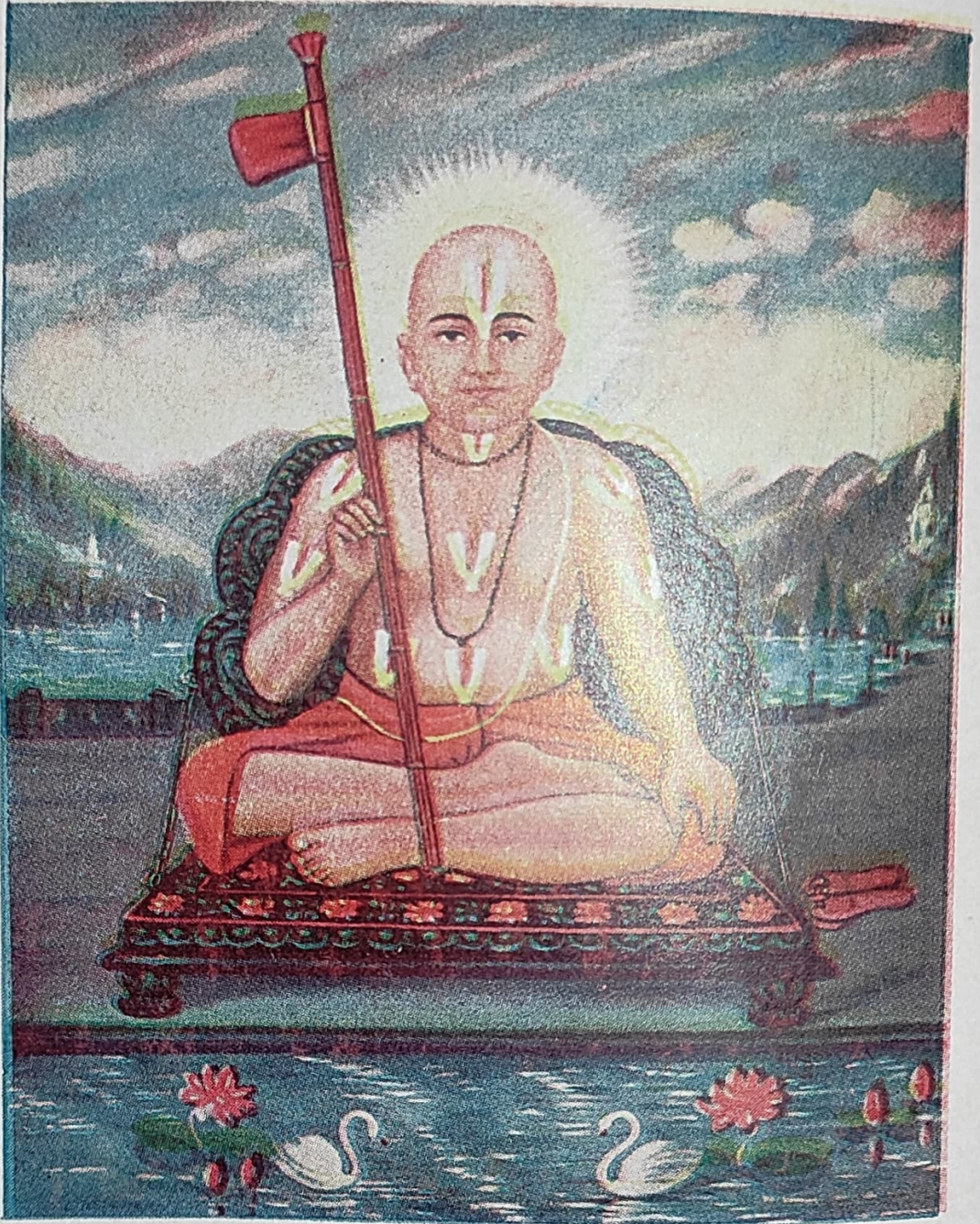
वादे वैदिकवादिनं विजयिनं वादीभपञ्चाननं
सिद्धेन्द्रैः परिपूजितं सुखकरं सिद्धिप्रदं सात्विकम् ।
रामोपासनदायकं मुनिवरं रामावतारं विभुं
रामानन्दजगद्गुरुं हितकरं वन्दे यतीनां पतिम् ॥

जगज्जनन्यै श्रीमैथिल्यै नमः ।
जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्याय नमः
जगद्गुरु श्रीसुरसुरानन्दाचार्याय नमः ।

भूमिका

संकृदेव प्रयन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ।। (वा० रा०)

इस कथनानुसार जो एक बार की प्रपत्ति से ही प्राणी को भूत मात्र से अभय प्रदान करते हैं, वे परिपूर्ण ब्रह्म भगवान् श्री सीतानाथ जी जिसके परमोपास्य हैं तथा जिसकी प्रवर्त्ति का जगज्जननी भगवती श्रीजानकी जी हैं उस श्री सम्प्रदाय के प्रधानाचार्य आचार्यसम्राट् भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी यतिसार्वभौम हैं। जिन्होंने प्रस्थानत्रय अर्थात् उपनिषद् गीता और ब्रह्म सूत्र इन तीनों प्रस्थानों पर पृथक पृथक तीन आनन्द भाष्य बनाये हैं जिन्हें श्रीरामानन्द भाष्य भी कहते हैं।

आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य जी के सहस्त्रों विरक्त शिष्य थे उनमें द्वादश प्रधान माने जाते हैं। वे द्वादश भागवतों के अवतार हैं। उनमें सतत भगवत्कीर्त्तनासक्त देवर्षि श्री नारदजी के अवतार जगद्गुरु श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी महाराज हैं जिन्होंने श्रीसुरसुरानन्दद्वारपीठ नामक श्रीरामानन्द पीठ की स्थापना की है, जो परम विशाल श्री सम्प्रदाय (श्रीरामानन्द सम्प्रदाय) के सचालन की सुव्यवस्था के लिये तत् तत् द्वार पीठा चार्यों द्वारा स्थापित किए गए ३६ द्वारपीठों में अन्यतम एक है ।

भगवान् श्रीसुरसुरानन्दचार्यजी ने श्रीरामानन्द वेदान्त सम्बन्धि वादों के तथा रहस्यत्रयादि प्रबन्धों के व्याख्यान रूप अनेकों प्रौढ ग्रन्थ बनाए हैं। जीवों के परम कल्याणार्थं अपने परमपूज्य गुरुदेव भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी से जगद्गुरु श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी ने दश प्रश्न किए थे। भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी ने उन दश प्रश्नों के दश उत्तरों द्वारा परमवैदिक श्रीसम्प्रदाय के उत्तम सिद्धान्तों को अत्यन्त सुगम, सक्षिष्त और सुन्दर रीति से प्रस्फुटित कर दिया है। इन दश प्रश्नोंत्तरों के समूह रूप ग्रन्थ का नाम 'श्रीवैष्णव मताब्ज भास्कर' है।

उक्त ग्रन्थ आनन्द भाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी की चतुर्थ रचना विदित होती है क्योंकि इस ग्रन्थ में श्री वैष्णवों के काल क्षेप के साधनों में भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य जी ने अपने आनन्द भाष्य का उल्लेख किया है। यथा
"शक्तैरानन्द भाष्यैश्च शुभमतियुताचार्य दिव्य प्रबन्धैः"(श्री वै म. भा०)

श्री वैष्णव मताब्ज भास्कर ग्रन्थ "यथा नाम तथा गुणः" की उक्ति को चरितार्थं करता है क्योंकि वह वस्तुतः श्री वैष्णव मत रूपी कमल को पूर्णतया विकसित करने वाला भास्कर (सूर्य) है। इस कथन की सत्यता प्रतीति के लिए मेरी सलाह है कि पाठक इस ग्रन्थ को स्वयं ही देखें। हाथ कंगन को आरसी क्या?
जगद्गुरु श्रीसुरसुरानन्द जी के उक्त दश प्रश्न निम्नलिखित प्रकार से हैं

१. तत्त्व क्या हैं?
२. श्रीरामशरणागत वैंष्णवों के लिए जपने योग्य क्या है?
३. इष्ट ध्यान क्या है?
४. मुक्ति का साधन क्या है?
५. श्रेष्ठ धर्म कौन है?
६. वैष्णवों के कितने भेद हैं?
७. वैष्णवों का लक्षण क्या ह?
८. काल क्षेप कैसे करना चाहिए?
९. कौन से मुक्तिप्रद साधन को प्राप्त करना चाहिए?
१०. वैष्णवों को कहां निवास करना चाहिए?

श्रीसुरसुरानन्दद्वारपीठाचार्य जगद्गुरु श्री सुरसुरानन्दाचार्य जी की सबसे बड़ी देन तो है श्री मैथिली महिमस्तव । श्रीमैथिली महिमस्तव में एक सो शिखरिणी छन्द हैं । अत एव इसे श्रीमैथिली शतक भी कहते हैं । इस महान् स्तव के पाठ से जगज्जननी श्री जानकी जी की परम कृपा के सम्पादन द्वारा प्राणी अपना परम कल्याण कर सकता है यह स्तोत्र प्राणियों के लिए कल्पवृक्ष के समान है । इसमें आचार्य चरणों ने अपने अति सुन्दर भावों को प्रदर्शित किया है । इस स्तव के पाठ से वे सारे भाव अर्थबोध पूर्वक पाठ करने वाले के हृदय में आ सकते हैं । उनके द्वारा पाठक अपना परम कल्याण कर सकता है । इस लिये इस स्तव की मैंने हिन्दी टीका भी लिखकर छपा दी हैं ।

जयपुर श्री रामबल्लभाशरणाश्रम से निकलने वाले सन्तपत्र में श्री सुरसुरानन्दचार्यजी के हिन्दी ग्रन्थ रागमञ्जरी के कुछ पद छपे हैं ।

श्रीसुरसुरसुरानन्दाचार्य जी की जयन्ती वैशाख शुक्ल ३ (अक्षय तृतीया) है । उस दिन आपकी जयन्ती का महोत्सव मनाना चाहिए ।

निवेदक

माघ कृ० ७ (श्रीमदाचार्य जयन्ती) स० २०२३ वि०

महन्त श्री कपिलदेवाचार्य व्याकरणतीर्थ
मोटा श्री राम जी मन्दिर
पालनपुर उत्तर गुजरात

————

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	३	गुरू	गुरु
१	५	पठपर	पीठापर
१	६	स्वमी	स्वामि
१	१०	ह	हं
१	१५	श्वशुरक	श्वशुरो
१	१६	यमा	समा
२	१	कृत	कृता
३	२	शोभेत	शोभेता
३	११	व्य,यां	व्यं,यां
,,	,,	समय	समयं
३	१७	गाम्भीर्य	गाम्भीर्यं
३	१९	श,भ	श,भं
४	६	वोढु	वाढुं
४	१३	ध्याय	ध्यायं
४	१५	श्याममहरह	स्यामहरहः
४	२	कार	कारं
५	१०	यदेयाहुः	यदप्याहुः
६	३	प्येष	प्येवं
,,	१२	कथ	कथं
१०	१७	महाब्धौ	महाब्धौ
१३	,,	सौख्य	सौख्य
१६	,,	त्व	त्व
१९	९	श्रह	श्रहं
१९	१०	त्थ,त्र	त्थ,त्र
१९	१६	त्वयेद	त्वयेदं
२०	५	महा	मही
२२	५	वसु	वसुः
,,	६	देक, वसु	देकः वसुः
,,	२४	मुख	मुखं
२३	३	म	म्
,,	४	म	म्
२४	६	म	
२४	१०	त्व	त्व
,,	१६	पूव	पूर्वं
,,	१७	लकेश	लंकेश
,,	१८	दुःख	दुःखं
२५	४	मंति	मति
२६	२	ह,म	ह,म्
,,	४	छीं	छी
२६	९	दौःस्थ्य	दौस्थ्य
२७	१०	बा	र्वा
,,	११	समा	समी
,,	१३	प्रष्ठ	प्रेष्ठा
,,	२०	ना	ना
३१	१	क्ष	क्षु
३२	२	तथवा	श्रथवा
३२	६	त्व	त्वं
३२	१०	मनन्त	मनन्तै
३३	७	भार	भारं
३४	१५	थं	थं
,,	१६	सख्य,भूद	सख्युः,भून्
३४	१	यद्	यन्
,,	१६	मानुन्तैम	ातस्ते
४०	१	नयायिक	नैयायिक

मोटा श्रीरामजी मन्दिर पालनपुर के

उपास्यदेव भगवान श्री सीतारामजी

भगवान के वामभाग में

पंडित राजेश्वरमहन्त श्रीकपिलदेवाचार्यजी महाराज

पालनपुरस्थ श्री मोटारामजी मंदिर की

सायंकालिक आरती स्तुती ।

जय देव! जय देव ! जय रामस्वामिन् !
तारय भवजलमग्नं, शुभकरुणाशालिन् ।।जय देव ! जय देव।।

कलये त्वां सुख–रूपं श्रित–मानुष–रूपम् ।
व्याप्त चिदचिद्रूप कोशलपुर–भूपम् ।।जय देव ! जय देव।।

हृत–मुनिजाया–शापं दत्यान्वय–तापम् ।
वंदे भक्त–दुराप खडित–शिव–चापम् ।।जय देव ! जय देव।।

जनक–तनूजा–कान्तं, ज्ञापक–वेदान्तम ।
नौमि तमेव नितान्त,भक्त्या हृदि भान्तम् ।।जय देव !जय देव।।

नीलपयोद–शरीरं परिधृत–मुनि–चीरम् ।
त्रिभुवन–जयिनं वीरं नमामि रणधीरम् ।।जयदेव !जय देव।।

रघुकुल–कैरव–चन्द्रं शुद्धं गत–तंद्रम् ।
दशमुख-हस्ति-मृगेन्द्रं प्रणमित-देवेन्द्रम् ।।जय देव! जय देव।।

सर्वामंगल–हरणं भवसागर–तरणम् ।
प्रणतस्यैकं शरण स्मरामि ते चरणम् ।।जय देव ! जय देव।।

मदन–मनोहर–वेशं कुंचित–मृदु–केशम् ।
नित्यविभूत्यमरेशं लीलारसिकेशम ।। जयदेव ! जय देव।।

सरयू-पुलिन-विहार निखिल-श्रुति-सारम् ।
"रघुवर"–हृदयाधारं वंदे गुणपारम् ।। जयदेव ! जय देव।।

वंदे विदेह–तनया–पद–पुंडरीकम्
कैशोर–सौरभसमाहित–योगिचित्तम्
हंतुं त्रितापमनिशं मुनि-हंस-सेव्यम्
सनमानि-शालि-परिपीत-पराग-पुंजम् ॥ १ ॥

दूर्वादल-द्युति-तनुं तरुणाब्जनेत्रम्
हेमाम्बर वर–विभूषण–भूषितांगम्
कंदर्प-कोटि-कमनीय-किशोर-मूर्तिम्
पूर्तिं मनोरथमवां भज जानकीशम् ॥ २ ॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव-
त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥३॥

शान्ताकार भुजगशयनम् पद्मनाभ सुरेशम्
विश्वाधार गगनसदृशं मेघवर्णं शुभांगम्
लक्ष्मीकान्तम् कमलनयनं योगिभिर्ध्यानिगम्यम्
वंदे विष्णुं भवभयहरणं सर्वलोकैकनाथम् ॥ ४ ॥

अच्युतं केशव रामनारायणम्
कृष्णदामोदर वासुदेवं हरे
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं
(श्री) जानकीनायक (श्री) रामचन्द्रं भजे ॥ ५ ॥
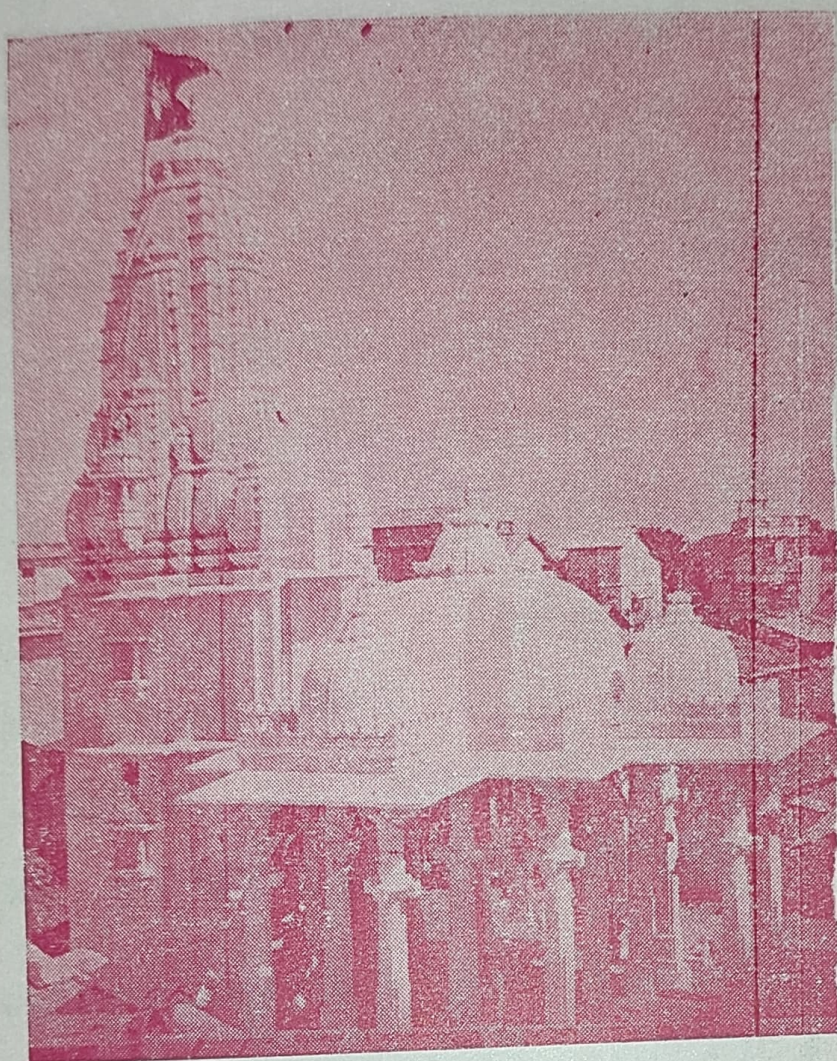
पालनपुर-उत्तरगुजरात का

नवीन मोटा नरसिंह जी मन्दिर (श्रीरामजी मन्दिर)

३९००१) रुपयों में बन कर तैयार हुआ

निर्माता:-पण्डित राजेश्वर महन्त श्री कपिलदेवाचार्यजी

महाराज व्याकरणतीर्थ

जगद्गुरु श्रीसुरसुरानन्दाचार्याष्टकम्

सुविन्यस्तं चित्रे निखिलमिव विश्वं प्रचयन्
स्वरैः सिञ्चल्लोकानमृतकलितैर्वा सुललितैः ।
सदा वीणानादो जयति खलु यस्य श्रुतिनिधेः
श्रये द्वाराचार्यं मुनिसुरसुरानन्दमनिशम् ॥१॥

विशालदव्यक्षोऽपि प्रपरिहृतसद्वामनयनः
सुधी रामासक्तो मणिरपि यतीनां सुशिरसाम् ।
अवध्योऽपि प्राप व्रतिपतिपदौ मोक्षसुधिया
श्रये द्वाराचार्यं मुनिसुरसुरानन्दमनिशम् ॥२॥

स्फुरन्मुग्धस्निग्धद्युतिचयकिरीटेष्वनुदिनं
धृतं धन्यैर्जन्यैर्दितितनुजसार्थे जयधिया ।
अतन्द्रैरिन्द्राद्यैश्चरणसुरजो यस्य च सुरैः
श्रये द्वाराचार्यं मुनिसुरसुरानन्दमनिशम् ॥३॥

न लोके सन्तोषं व्रजति ननु जीवो विरहितो
बुधारामाद्रामाच्छ्रवणमननध्यानविधिभिः ।
इति स्वच्छादेशं दिशि दिशि दिशन्यः स्म चरति
श्रये द्वाराचार्यं मुनिसुरसुरानन्दमनिशम् ॥४॥

महाज्ञानोद्रेकाज्जितनिखिलवादीभनिकरः
प्रपन्नानां त्राता श्रुतिशिरसि धातेव निरतो
भवोच्छेदं न्दृणां निजगुरुमपृच्छत् करुणया
श्रये द्वाराचार्यं मुनिसुरसुरानन्दमनिशम् ॥५॥

त्रयीशुद्धा विद्या तुहिनकरहृद्या भगवती
सुधासिन्धोर्धारा हरिहृदयारामविमला ।
विरिंचेर्वा व्यांचत् यतिकुलगुरोर्यस्य वदनं
श्रये द्वाराचार्यं मुनिसुरसुरानन्दमनिशम् ॥६॥

अहोऽनंगोऽनंगो विहितमृगसंगो मकरःहि
शचीदारो जारो भुजगपतिहारस्त्रिनयनः ।
गिरां यस्यौपम्ये मतिरपि कवेस्ताम्यतितराम्
श्रये द्वाराचार्यं मुनिसुरसुरानन्दमनिशम् ७॥॥

वदन्तं कण्यासश्रुतिविशदवाच्यं सुमतये
जलोन्मज्जन्नाला स्फुटितकमलाद्वो हरिरिति ।
यमानचुर्देवाः सुरतरुजपुष्पैः परिषदि
श्रये द्वाराचायं मुनिसुरसुरानन्दमनिशम् ॥८॥

श्रीमत्पण्डितराजश्रीकपिलदेवेन निर्मितम् ।
भूयात् सुरसुरानन्दस्तोत्रं श्रेयोविधायकम् ॥

जातः सुरसुरानन्दो नारदोमुनिसत्तम ।
वैशाखसितपक्षस्य नवम्यां स वृषे गुरौ ॥ (अ.सं.)

रामानन्दकृतानन्द भाष्यत्रय प्रचारकम् ।
श्रीमत्सुरसुरानन्दं द्वाराचार्यं नमाम्यहम् ॥

श्रीसीतारामौ विजयेतेतराम् ।

श्रीमद्रामानन्दाचार्याय नमः

आचार्यप्रवर श्रीसुरसुरानन्दाचार्य स्वामीजी का

संक्षिप्त जीवन चरित्र

(ले० पण्डितराजेश्वर स्वामि श्रीकपिलदेवाचार्यजी)

आचार्य शिरोरत्न श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी के अवतार के विषय में अगस्त्यसंहिता अध्याय १३२ का यह २९ वां श्लोक प्रसिद्ध है—

जातः सुरसुरानन्दो नारदो मुनिसत्तमः ।
वैशाखासितपक्षस्य नवम्यां स वृषे गुरौ ।।

इसके अनुसार आप देवर्षि श्री नारदजी के अवतार हैं।

परम प्रसिद्ध ग्रन्थ भक्तमाल में आपके विषय में २ षट्पदी प्राप्त होती हैं—

एकबार अध्वा चलते मैं बरा वाक्य छल पाये ।
देखा देखी शिष्यहु ते पाछेते खाये ।।
तिन पर स्वामी खिजे वमन कर बिन विश्वासी ।
तिन तैसी प्रत्यक्ष भूमिपर कीन्हीं राशी ।।
सुरसुरी सुवर पनि उदगले पुष्परेणु तुलसी हरी ।
महिमा महाप्रसाद की सुरसुरानन्द संचीकरी ।।भ. मा. ६५।।
अति उदार दम्पत्ति त्यागि गृह वन को गमने ।
अचरज भो तहँ एक सन्त सुनि जनि हो विमने ।।

बैठे हुते इकन्त ग्राय ग्रसुरन दुख दीयो ।
सुमिरे सारंगपाणि रूप नाहर को कीयो ।।
सुरसुरानन्द की घरणि को सत राख्यो सो खल जह्यो ।
महासती सत ऊपमा त्यों सत सुरसरि को रह्यो ।।भ.मा. ६६।।

इन इतिहासों के अतिरिक्त किंवदन्तियोंके रूपमें आपके इतने चरित्र प्रसिद्ध हैं कि उन सबका संकलन किया जाय तो एक स्वतंत्र ग्रंथ हो जायगा, अतः उसका समावेश यहां असम्भव है । हां आपके समकालीन प्राकृत भाषाके कविप्रवर श्रीछितीशजी,उनके पुत्र और पुत्र के मित्र(जिन दोनों के नाम अज्ञात हैं)ने आचार्य सार्वभौम आन्दभाष्यकार भगवान श्रीरामानन्दाचार्यजी के सभी द्वादश शिष्यों के चरित्र पिशाचगणभाषा के शब्द योग से देशवाड़ी प्राकृत भाषा में पद्यबद्ध वर्णन किये हैं जिनका गद्य हिन्दी अनुवाद आज से लगभग ६० वर्ष पूर्व (श्रीअयोध्याजी से प्रकाशित होने वाले) तुलसीपत्र नामक तत्कालीन मासिक पत्र के यशस्वी संपादक भारत, की प्राचीन एवं वर्तमान अनेक भाषाओं के ज्ञाता, परमविरक्त सन्त महात्मा श्रीबालकरामजी विनायकने किया है जो बीसियों वर्ष पूर्व मानससंघ रामवन सतना मध्यप्रदेश से प्रकाशित भी हुआ है उसके आधार पर कुछ संक्षिप्त चरित्र यहां पर दिये जा रहे हैं ।

आचार्य प्रवर जगद्गुरु श्री सुरसुरानन्दाचार्य स्वामी जी की जन्म भूमि होने का सौभाग्य लक्ष्मणपुर (लखनऊ) के समीप के पैखम नामक ग्राम को प्राप्त हुआ है । आपके पिता का नाम पं० श्री सुरेश्वरजी था जो बड़े विद्वान, परमभक्त और परम सरल

प्रकृति के थे। छल कपट दम्भ आदि छूभी नहीं गयेथे। अतः समस्त ग्राम वासी आपको भोले भाले पंडितजी ही कहा करते थे और दूरदूर तक इसी नाम से प्रसिद्धि हो गयी थी। माता भी वैसी ही सुशीला साध्वी सरलप्रकृति वाली थीं और भुलिया पंडिताइन के नाम से प्रसिद्ध थी। धन धान्य और सम्मान का पूर्ण सुख था। भू सम्पत्ति भी पर्याप्त मात्रा में थी। यदि किसी सुखका अभाव था तो वह सन्तान सुखका। द्विजदम्पत्तिका सारा ही समय भगवत भागवत आराधन, गोब्राह्मण प्रति-पालन, पठन पाठन, सत्संग और आतिथ्य में ही व्यतीत होता था। साधु-ब्राह्मणों को तो अन्न धन के अतिरिक्त गाय, बैल और घोड़े भी प्रदान किये जाते थे एवं आपके दरवाजे से भूखे तो कोई मनुष्य क्या पशु पक्षी भी नहीं लौटते थे।

एक दिन मध्यान्हकालिक आराधन भोजनादि से निवृत्त होकर द्विजदम्पत्ति दालान में आसीन थे उसी समय पांच पंडुक (कपोत) पक्षी आकाश से आपके आंगन में उतरे। माताजी के छींटे हुए दाने चुगते हुए सानन्द आहार विहार का आनन्द लेकर उनमें से चार तो उडगये और एक उसी प्रकार से आनन्द विभोर हुआ डुगरता रहा। उसकी वीतराग वृत्ति की द्विजदम्पत्ति के मुख से प्रशंसा हुई जिसको सुनकर मानव वाणी में आपको पुत्र सुख प्राप्त होने का वरदान देकर वह भी उड गया।

कुछ ही काल में पंडिताइनजी को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई और उस समय परम आश्चय की बात यह हुई कि नव जात शिशु का रुदन रुदन के रूपमें नहीं, प्रत्युत ताल स्वर संयुक्त गायन और आलाप के रूप में हुआ और फिर भी स्तन पानादिक के अर्थ जब जब भी बालक के

रुदन के सामयिक प्रसंग आते तब उनमें उसी प्रकार सस्वर गायन कीसी ध्वनि होती थी ।

शिशुका परमसुन्दर रूप रंग और यह अद्भुत रुदन मातापिता को तो आनन्दित करताही था, ग्रामवासी एवं आगन्तुकों को भी परमानन्द एवं आश्चर्य प्रदान करता था ।

बालक के एक वर्ष का होने पर वर्षगांठ के दिन उत्सव मनाया गया। बालक को उबटन लगाकर स्नान कराया गया, मामाके लाये हुए वस्त्र आभूषण धारण कराकर चौकीपर माता लेकर बैठी और बालक का पूजन किया गया । इस उत्सव को इस प्रान्त में बालपूजा उत्सव कहा जाता है और इसमें बालक के मामा का उपस्थित होना परम आवश्यक माना जाता है । बालक का नामकरण भी इसी उत्सव में किया जाता है । बालक के मामा पं० श्रीनारायणशर्माजी वस्त्राभरण आदि समस्त पूजा सामग्री लेकर चार दिन पहले ही आगये थे, परन्तु भूल से अपनी भगिनी की साड़ी नहीं लाये थे जिसके लिये वे चिन्तित हुए । उसी समय आकार प्रकार अवस्था और रूपरंग में बिलकुल उन्ही के जैसे एक द्विजदेव साड़ी लेकर वहां पहुंचे और साड़ी देकर पं० श्रीनारायणजी को चिन्तामुक्त किया । उपस्थित लोगों के पूछने पर इनने भी अपना नाम नारायण बताया । इनको देखकर सब लोग चकित हो गये और कहने लगे स्वरूप में इतनी समानतातो यमजात भ्राताओं में भी नहीं देख पडती और इनकातो नाम भी एक ही है, यह महान आश्चर्य है । ग्राम ठामका पता इनने अपना कुछ नहीं बताया और बालक को आशीर्वाद देकर कुछ ही देर में अदृश्य (गायब) हो गये जिसका किसी को कुछ पता नहीं

लगा। बालक का नामकरण हुआ। किसीने बालक को गायण कहा किसीने मायण और किसी ने भायण परन्तु आगे चलकर बालक का नाम भायण ही प्रसिद्ध हो गया।

इसी प्रकार बालक भायण कुमार के अन्नप्राशन, मुंडन, मौंजीबंधन आदि सभी संस्कारों के समय ठीक समय पर नारायण नाम के अज्ञात महाशय कुछ न कुछ बालक के उपयोग की भेट वस्तु लेकर पहुँच जाते थे और आते समय तो नहीं परन्तु लौटकर जाते समय लोग बहुत टोह में रहते थे कि ये कब और किधर जाते हैं, परन्तु कोई कुछ पता नहीं लगा सके थे। इनसे कोई ग्राम ठाम पूछते तो इनका उत्तर होता "बस आप लोग इस मेरी भागिनी के घरको ही मेरा घर समझ लीजिये।" बालक को सब कोई भायण नाम से संबोधन करते परन्तु ये अज्ञात मामा 'नारद' कहते।

बालक भायण के रुदन हास्य व बोल चाल में स्वर ताल एवं लय की ध्वनितो जन्म से ही सुनी जाती थी। प्राय: पांच वर्ष की अवस्था से देखा जानेलगा कि ग्राम में कोई गान वाद्य निपुण व्यक्ति आता और कहीं भी भगवन्नाम यशकीर्तन का समाज जुटता तो बालक भायण भी उसमें अवश्य होते और गायक के साथ गाने लगते तथा उपस्थित जनता तथा गायकों को भी विमुग्ध कर देते। इतनाही नहीं सांरगी सितार बेला एव वीणा आदि जो भी बाजे होते उनको इतनी कुशलता के साथ बजालेते कि गान वाद्य कुशल आगन्तुक लोग कहने लगते "यह बालक तो मनुष्य नहीं, कोई देवता है, गन्धर्व है, या गन्धर्व शिरोमणि देवर्षि नारद का ही साक्षात् अवतार है"।

बालक भायरण जब आठ वर्ष के हुए तो द्विजवर पं० श्रीसुरेश्वरशर्मा-जीने यज्ञोपवीत संस्कार के महोत्सव का आयोजन किया। दूर दूर से सगे संबन्धी एवं प्रसिद्ध वैदिकों को बुलाया गया। उत्सव में मनोरंजनार्थ बहुत से गायक वादक भी आमन्त्रित किये गये। सब लोगों को बहुत ध्यान था कि बालक के उन देवतुल्य अज्ञात मामा श्रीभायरण जी को भी आमंत्रण भेजा जाय, परन्तु ग्राम ठाम का पता न होते से आमन्त्रण नहीं भेज सके परन्तु सबके मनमें यह विश्वास अवश्य रहा कि वे समय पर अवश्य उपस्थित हो जांयगे, क्योंकि भायरण कुमार के किसी भी संस्कार में जब वे अनुपस्थित नहीं रहे तो यज्ञोपवीत में न आवें, यह कैसे हो सकता है।

शुभ मुहूर्त आया, यज्ञादि क्रियायें सम्पन्न हुई अन्त में ज्यों ही वटुक भायरण झोली लेकर भिक्षा फेरी के लिये निकले कि अज्ञात मामाजी उपस्थित हो गये और बटुक की झोली में एक स्वर्ण मुद्रा छोड़ कर तुरंत गायब हो गये। समस्त क्रिया समाप्त होने पर जब बालक वृद्धों के चरण स्पर्थ के लिए उद्यत हुए तब पं० श्री सुरेश्वर शर्मा जी ने उनकी बहुत खोज की परंतु उनके दर्शन नहीं हुए। विचार शील व्यक्तियों ने कहा उन महर्षितुल्य अज्ञात द्विजदेव का बालक के सभी सस्कारों में उपस्थित होना वैसी ही दैवी घटना है जैसी इस बालक के रुदन हास्य आदि में लयताल और स्वर की ध्वनि की। यह सब पंडित सुरेश्वरजी जैसे ऋषियों के ऊपर श्रीभगवत्कृपा के द्योतक लक्षण हैं।

यज्ञोपवीत के कुछ ही दिन पीछे एक बार उन अज्ञात महाशय ने फिर दर्शन दिये और अपने भानजे भायरण कुमार को एक परम सुन्दर बीरणा भेटकर के चले गये।

पं० श्रीसुरेश्वर शर्मा जी के बाहर दरवाजे से सट कर एक फूस की छाया का दालान बना हुआ था जिसमें एक ओर गोशाला थी और दरवाजे की ओर एक कमरा बना था जो आगन्तुक अतिथियों के ठहरने के काम में आता था। यज्ञोपवीत संस्कार के दिन से ही भायण ने इस गोशाला के ही एक किनारे में अपना आसन लगालिया और प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त में स्नानादि से निवृत्त हो इसी आसनपर आसीन हो मध्यान्ह तक गायत्री मंत्र का जप करने लगे। अपरान्ह में भोजन स्नानादिक से निवृत्त हो पुनः बैठ जाते सो अर्ध रात्रि तक जप करते। अपनी वीणा के साथ वे राम राम, अचलठाम, विमल नाम, परतर धाम।' इस मंत्रका गान करते, ग्राम के बालक भी वहां पहुंच कर साथ साथ गाते और अपने अपने घरों में सदाही गुनगुनाया करते, जिसको सुनकर ग्राम बधूटियों को भी यह याद होगया और इस प्रकार से दूर दूर के ग्रामों तक में यह मंत्र प्रचलित हो गया।

इस प्रकार अनुष्ठान करते हुए श्रीभायणजी बाल्यावस्था से कुमारावस्था को प्राप्त हो गये और वेद माता के इस अखंड अनुष्ठान के प्रभाव से स्वतः वेद शास्त्र उनके कंठ में आ विराजे। कुमार को मालुम न हो सके इस गुप्त रीति से विवाह की बातें चलाने लगी और दूर दूर के धन विद्या और सदाचार सम्पन्न घरों की सुशीला कन्याओं के सम्बन्ध आने लगे।

पंखम के समीप के ही वेदीपुर ग्राम में ऋषि महर्षियों के जैसे आचारवान् एक द्विजदेव की विदुषी कन्या मातृ पितृहीन एवं दयनीय अवस्था में सयानी हो गई थी। विवाह नही हो सका था। उसने

कुमार भायरा के भजन अनुष्ठान आदि के विषय में सुना तो वह दो चार बार छुपी छुपी आकर इनके दर्शन कर गई। साथही इनके ऊपर मोहित होकर यह निश्चय कर लिया कि मैं विवाह करूंगी तो इस कुमार के साथ ही करूंगी अन्यथा आजीवन कुमारी रहकर ही भगवद् भजन करूंगी। कुमार भावरा ने भी उसको देख लिया था और उसकी भावना से भी अवगत हो गये थे। साथ ही इनका भी कुछ ध्यान उसकी ओर खिचने लगा था। इसमें कुमार को व्याकुलता हो चली थी कि यह विकार मेरे मन में क्यों अपना स्थान बना रहा है। इसी समय आप के अज्ञात मामा उपस्थित हो गये। कुमार ने आसन से उठकर उनको साष्टांग प्रणाम किया और मामाजी अपने भानजे के कान में कुछ कहकर चलते बने। जांते समय संयोग वश उस दरिद्रा विदुषी और सुलक्षरणा कन्या को भी इनके चरणों में प्रणाम करने का सुअवसर मिल गया। अज्ञात मामा जी कुछ बोले तो नहीं परंतु उसको अवश्य ऐसा संतोष हो गया कि जैसे तो वे उसको कुछ आशीर्वाद दे गये हों।

बस उसी समय कुमार भायरा ने उठकर अपने पिताजी के पास जाकर प्रणाम कर निवेदन किया "आज मेरे अनुष्ठान की समाप्ति हो गई है। अब हवनादि हो जाना चाहिये"। पिताजी ने पूर्णाहुति में यज्ञ और ब्रह्मभोज आदि का प्रबन्ध किया। धूमधाम से उत्सव हुआ जिसकी समाप्ति पर कुमार ने सब ग्रामवासियों की समुपस्थिति में पिताजी और माताजी से प्रार्थना की कि "अब इस बालक को काशी जाकर विद्याध्ययनादि की आज्ञा प्रदान कीजिये। द्विज कुमार को

उपनयन संस्कार के पश्चात् अध्ययनार्थ चला जाना ही चाहिये, परन्तु आप लोगों के स्नेह और अनुग्रह में मेरा इतना समय वेद माता के अनुष्ठान में निकल गया, अब तो मुझे जाना ही चाहिये"। माता पिता कुछ भी न बोल सके और कुमार भायण अपने दंडकमंडलु को लेकर उसी समय काशी पुरी के लिये प्रस्थान कर गये। जब कुमार चलने लगे तो पिताजी ने बहुत आग्रह किया कि हम भी तुम्हारे साथ चलेंगे, परंतु कुमार के यह समझाने पर कि "यह तो वेद मर्यादा के प्रतिकूल होगा। आपकी कृपा से ही मेरा मार्ग और जीवन मंगलमय होगा। आप मुझे इकेला ही जाने दीजिये"। पिताजी लौट आये और ग्रामवासी सब महर्षि स्वरूप श्री सुरेश्वर द्विजवर की जय हो कुमार श्री भायण की जय हो के नारे लगाते हुए आनन्द प्रकट करने लगे।

कुमार भायण की इस काशी यात्रा के समाचार सुनकर वह ब्रह्मचारिणी (दरिद्रा द्विज कुमारी) भी आजीवन कुमारी रह कर भगवद्भजन पूर्वक जीवन बिताने के विचार से काशीपुरी को रवाना हो गई और कुमार से बहुत पहिले ही काशी पहुंचगई।

कुमार भायण इस यात्रा में अपने दंडकमंडलु के साथ साथ वह मामजी की दी हुई वीणा भी साथ में ले गये थे, और मार्ग वासियों को अपने दर्शन सत्संग के आनन्द के साथ ही साथ भगवन्नाम यश गायन का भी आनन्द प्रदान करते हुए जाते थे। अनेक भाग्यवान जन तो आपके साथ ही होलिये थे जो काशी तक साथ गये थे।

इन सब साथियों के साथ काशी में पहुँच कर आप ने श्री गंगा स्नान किया, तट पर बैठकर भगवदगुणगान किया और भगवान श्री

विंदुमाधवजी का दर्शन करके पंचगंगाघाट पर आये। पंचगंगाघाट पर सत्संगियों की भीड लगी थीं और गुफा से उपदेश सुनाई पड रहा था। द्विज कुमार श्रीभायणजी भी अपने इन संगी साथियों के सहित एक किनारे बैठकर सुनने लगे। भायण जी के कानों में यह शब्द सुनाई पड़े "जैसे चन्द्रमा के समुख और सूर्य को पीठ देकर बैठने का मनुष्य का स्वभाव है वैसे ही मन के संमुख होकर भगवान को पीठ देदेन का भी इसका स्वभाव है, परन्तु यह उत्तम नहीं। जीव मन को पीठ देकर (मन का कहा न करके) भगवान के संमुख रहे,तभी इस का कल्याण संभव है" शरणागति रहस्य के इन इतने से शब्दों को सुनकर कुमार भायण ने अपने को कृत कृत्य माना और साथियों को विदाकर आप श्रीमठ में प्रविष्ट हुए। प्रांगण में श्री अनन्तानन्दाचार्य स्वामीजी ने इनका आतिथ्य किया और अपने पास बैठाया इतने ही में संध्या काल हो गया। दिया बत्ती के समय में पर्दा हटा। यतिसम्राट जगद्गुरु आनन्दभाष्यकर अनन्त श्री स्वामी रामानन्दाचार्यजी के दर्शन हुए। उस दिव्य छविको निहार कर द्विज कुमार तृप्त नहीं होते थे। आचार्यचरणों के परिचय विषयक संकेत पर आपने ग्राम और पिताजी का नाम निवेदन किया और साथ ही निवेदन किया कि एक अलौकिक नारायण नामक द्विजदेव की आज्ञानुसार यह दास चरणों में उपस्थित हुआ है। वे द्विजवर अपना नाम नारायण कहते थे, मुझे नारद कहकर संबोधन करते थे और अपने आप को मेरा मामा कहा करते थे। हे प्रभो मेरी यह जानने की बड़ी इच्छा है कि वे कृपालु द्विजदेव कौन हैं। ? आचार्य चरण की आज्ञा हुई कि तुम धैर्य धारण करो! कुछ दिन में यह सब रहस्य अपने आप ही ज्ञात हो जावेंगे।

इसी समय शंख ध्वनि हुई, जिसको सुनकर सभी साधकों को अपने अपने साधनों में मार्ग दर्शन हुआ। । द्विजकुमार भायरा को अपना पूर्व जन्म का सब वृत्त सामने दिखाई देने लगा। तन्द्रा देवी की गोद में बैठे बैठे अव्यक्त दृष्टि और वाणी के द्वारा अपने पूर्व जन्म की वह सारी लीला देख सुनली जोकि काम क्रोध के त्रिजेतापने के अभिमान को लेकर क्षीर समुद्र में पहुंचे थे, लौटते समय माया नगरी में राजकुमारी के लक्षण देखकर विवाह के लिये लालायित हुए थे, जिस प्रकार से प्रभु ने उस प्रपंच से दूर किया था, आपने शापदिया था, प्रभुने अवतार लिया तब जाकर उस सबका कारण पूछने पर आपका समाधान किया गया था इत्यादि के साथ यह और सुना कि "उसी समय हमने यह निश्चय कर लिया था कि कलियुग में हमारे साथ जब तुम भी अवतरित होगे तब इस सब वासना की पूर्ति भी ऐसे ढंग से कर दी जायगी कि आपके स्वरूप की हानि भी न होगी और वासना भोग भी हो जायगा क्योंकि तुम सदा से मेरे परमप्रिय भी हो।"

उस तन्द्रा के भंग होने पर आपको एक महान हार्दिक चोट लगी और प्रभु की भक्त वत्सलता का अनुभव करके परम आह्लाद भी हुआ। मन ही मन भगवान के लौकिक गुण चरित्रों का मनन होने लगा। आप श्री मठ में ही भोजन करके सो गये। प्रातः काल स्नान सन्ध्यादि कृत्य से निवृत्त होकर श्रीअनन्तानन्दाचार्य स्वामी जी की सन्निधि में आकर बैठे ही थे कि देखते क्या है कि वही सुरसुरी नामक मातृपितृ हीना वेदीपुर ग्राम निवासिनी द्विज कुमारी भी वहां आकर उपस्थित होती है और प्रार्थना करती है कि मैं यतिसार्वभौम श्री आचार्य

चरणों से परमार्थ की भिक्षा मांगने आई हूं। यह सुनकर उसको मठ में प्रवेश करने की आज्ञा मिल गई है। समय पर भगवत्प्रसाद मिल गया है। अपराह्ण में जब गुफा का परदा हटा तब सब दर्शनार्थियों के साथ वह कुमारी भी आगे आई और सब के दंडवत प्रणामादि कर चुकने पर उसने भी श्री चरणों का अपने प्रेमाश्रुओं से सिंचित करते हुए प्रणाम किया। श्री आचार्यपाद के द्वारा आशीर्वाद मिला "सौभाग्यवती भव"। कुमारी ने कहा प्रभो यह दासी तो कुमारी है और परमार्थ भिक्षा के अर्थ श्री चरणों में उपस्थित हुई है। श्रीमदाचार्य देव की आज्ञा हुई कि सब होगा परन्तु पति के साथ। पहले तुमको अपने अभीष्टवर की प्राप्ति होगी और फिर पति के साथ ही परमार्थ भिक्षा मिलेगी। वह चुप हो रही। इतने ही में द्विजकुमार भायण ने भी श्री चरणों को स्पर्श करते हुए साष्टांग प्रणाम किया। कुमारी को देखकर चकित हो गये और मन ही मन कहने लगे 'देखो विधाता का क्या विधान है। इसने यहां तक भी पीछा नहीं छोड़ा है।" शंखनाद हुआ जिससे सब लोग समाधिस्थ से हो गये। उसी में करुणासिंधु भक्त वत्सल श्री आचार्यचरण ने उन दोनों को पूर्व लीलाओं को दिखाकर दोनों का समाधान कर दिया और पाणिग्रहण की आज्ञा प्रदान करदी। जब सब लोग सचेत हुए तब तक गुफा का द्वार बंद हो चुका था। दर्शनार्थी सब अपने अपने स्थानों क चले गये थे।

थोडी देर पीछे फिर परदा हटा और श्रीमदाचार्यपाद के चरणों में श्रीअनन्तानन्दाचार्य स्वामीजी इन दोनों कुमार कुमारी को लेकर उपस्थित हुए। श्रीमदाचार्य महाप्रभुने दोनों को पंच संस्कार पूर्वक

श्री वैष्णवी दीक्षा प्रदान की, नाम करण में कुमार भायरण का नाम स्वरसारानन्द हुआ जो भाषा में सुरसुरानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुआ और कुमारी का नाम सुरसुरी ही रहा। दोनों को पाणिग्रहण करके भजन करने की आज्ञा हुई और यह भी आज्ञा हुई कि श्री रामकृपा से इस पूर्व वासना का बड़ी सरलता से भोग करके कुछ ही दिनों में तुम यहाँ आकर हमारी सेवा में ही रहोगे। यह तुम्हारा परीक्षा काल है सावधान रहना साथ ही घबराना नहीं, प्रभुशरणगत जीवों कों पतनोन्मुख कोई नहीं कर सकता है। दीक्षा के पश्चात् परदा आगया और ये दोनों श्री अनन्तानन्दाचार्य जी के साथ आगये।

श्री अनन्तानन्दाचर्य स्वामीजी ने आपको तीन दिन तक मंत्र मंत्रार्थ के रहस्य और श्रीवैंष्णवधर्म के इस धरातल में प्रचलित होने के इतिहास समझाये, भजन विधिका उपदेश किया। इस प्रकार से तीन दिन श्रीमठ में श्रीमदाचार्यचरण के दर्शन उपदेश एवं श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी के सत्संग का आनन्द लेते रहे। तीसरे दिन आचार्य चरण की आज्ञा हुई कि अब तुम अपने घर चले जाओ, वहां विधि पूर्वक विवाह करके फिर किसी जंगल में जाकर दोनों भजन करना। परीक्षा के समय घबराना नहीं सावधान अवश्य रहना। "गुरु आज्ञा गरीयसी" के अनुसार आपने आज्ञा को शिरोधार्य की और दोनों अपने अपने ग्राम आगये। श्रीसुरसुरानन्द जी (पूर्व के भायरण कुमार) ने यहां आकर माता पिताओं को प्रणाम किया, सब समाचार कहा और वेदीपुर ग्राम की उक्त द्विजकुमारी का पाणिग्रहण करने का विचार व्यक्त किया। जिसको सुनकर माता पिता परिवार और ग्रामवासियों को

अपार आनन्द हुआ तथा कुछ ही दिन में शुभ लग्न देखकर विवाह संस्कार संपन्न हो गया ।

विवाह होते ही आप माता पिताजी से बड़ी अनुनय विनय पूर्वक आज्ञा ले ग्राम वासियों को धैर्य देकर पत्नी के सहित तपश्चर्या के हेतु बनको प्रस्थित होगये । श्रीआचार्यचरण की आज्ञा का सतत चिन्तवन करते हुए इन अलौकिक दम्पति ने परम सावधानी पूर्वक भजन करते रहने का संकल्प किया । काम देव ने पूर्व पराजय का स्मरणकर इस समय इनसे दुश्मनी निकाल ने का अनेक बार पूर्ण प्रयत्न किया परंतु श्री आचार्यानुग्रह से ये सदाही विजयी हुए ।

मार्ग में एक अलौकिक उद्यान और आश्रम मिला जिसमें भोग और भजन की सभी सुविधायें थीं, आपने कुछ दिन उसमें निवास किया और भजन की सुविधाओं का उपभोग किया, भोग की सुविधाओं की ओर देखा भी नहीं । महा भागवत चरित में इस काम की करतूत एवं आप के निर्विकार रहने का बड़े विस्तार से वर्णन है उसे विस्तार भय से यहां केवल संकेत मात्र करके छोड़ दिया जाता है । एक बार आप वन में विचरते विचरते एक ग्राम के समीप पहुंच गये और वहीं कुछ दिन रह गये । इस ग्राम में कुछ मुसलमानों के घर थे उनमें से एक अस्थाक नाम का व्यक्ति ग्राम के बाहर घूम रहा था कि उसकी दृष्टि श्री सुरसुरी देवीजी पर पड़ गई । वह मदान्ध काम मोहित हो आकर आपसे कहने लगा—बाबा यह बीबी तो हमको देदो, आप तो फकीर हैं, फकीरों को बीबी रखना ठीक नहीं । आप मुसकुराते रहे और कोई जवाब नहीं दिया । वह तो व्याकुल था, रात में आकर

उपद्रव मचाने की ठानी और आप जहां विश्राम कर रह थे वहां आकर ऊल जलूल अपशब्द बकने लगा। इतने ही में वहां एक सिंह आया और उसने उसको मार डाला।

इस लीला के पश्चात एक दिन श्री सुरीसुरी जी ने आप से प्रार्थना की-नाथ! मेरे कारण आपको बहुत कष्ट उठाने पड़ रहेहैं अब इस दासी को परलोक गमन की आज्ञा प्रदान की जाय तो ठीक हो। श्री आचार्य चरण के अनुग्रह से आपको और इस दासी को पूर्वापर सभी वृत्त विदित हो ही चुके हैं। अब आप भी निर्द्वन्द हो श्री मदाचार्य चरणों का सेवन कीजिये और यह दासी भी उन्ही के दिव्य मगल विग्रह के कैंकर्य में उपस्थित होगी। देखते ही देखते आकाश से विमान आया और उसमें आसीन हो सुरसुरी जी नित्य श्री साकेत धाम को पधार गई और आप काशी के लिए प्रस्थित हो गये।

मार्ग में एक वाम मार्गी वैष्णववेश बना एक पात्र में कुछ बड़े लेकर उसमें ऊपर तुलसी दल रखकर आपके सामने आकर कहने लगा-भगवत्प्रसाद है, आप भी ग्रहण करिये। प्रसाद फा नाम सुनकर आप प्रेम विभोर हो गये और एक कणका उसमें से लेकर पा गये और चल दिये। आपके पिछाड़ी आपका एक शिष्यभी कुछ दूर पर था वह जब वहां पहुंचा तो उससे भी उस वामीने वही छलकिया और प्रसाद कह कर पेट भरकर उसको वे बड़े पवादिये। आगे चलकर शिष्य अब आपके पास पहुंचा तो आपके पूछने पर शिष्य ने कहा हां उस सज्जन ने बड़े तो पेट भरकर पवाये थे। आपने भी तो पाये थे? तब आपने शिष्प को डांटा और कहा—हमने प्रसाद नाम की अवज्ञा न हो

इस लिये कणका मात्र पाया था और तैंने तो स्वादिष्ट समझकर पेट भर लिया है। संभव है वह तो छल से कुछ अपवित्र वस्तु लाया था तुम वमन करो। शिष्य ने वमन की तो वही जो कुछ खाया था सो निकल पड़ा और आपने वमन की जिसमें पुष्प पराग एवं हरी तुलसी निकली।

आगे कुछ दिन के बाद मार्ग में आपने सैंकड़ों आदमियों को विलाप करते देखा। आपको देखकर वे लोग आपके चरणों में आ गिरे और कहने लगे—हम लोग बरात लेकर आये थे, रात में विवाह करके लौट रहे थे कि अभी कुछ देर पहले यह वर मर गया इसी से हम सब महान दुखी हैं। आपको दया आई और आपने उन सबको भगवान के भजन करने का उपदेश देकर मृत दूल्हा के मुख में अपने भगवान का चरणमृत डाला त्योंही वह जी उठा। सब लोग कृत कृत्प हो गये।

आप काशी श्री मठ में पहुंचकर श्रीआचार्य चरणों में गिरे। आचार्य देव ने उठाकर कुशल पूछी तो आपने प्रार्थना की प्रभो! आपके चरणों में ही कुशल का वास है। आचार्य महा प्रभु ने कहा तुम में जो बीती वह हम सब जानते हैं। तुम परीक्षा में खरे उतरे हो, अब कोई चिंता नहीं। परीक्षा समाप्त हो गई, अब आनन्द से भजन करो। आपने उत्तर तो वही दिया जो पूर्व जन्म में क्षीर समुद्र में दिया था कि प्रभो यह सब तो आपकी कृपा का ही फल है। परंतु उत्तर में वह गर्व तरुके अकुरित होने की झलक इस समय नहीं थी। आचार्य देव परम प्रसन्न हुए, आशीर्वाद दिया और विरक्तदीक्षा प्रदान कर

श्री सुरसुरानन्दाचार्य नाम करण किया। आप श्री आचार्य चरण की सेवा में रत रहते हुए अवकाश के समय में अपने जेष्ठ गुरु भ्राता श्री अनन्तानन्दाचार्यजी से श्रीआचार्य देव द्वारा निर्मित प्रस्थान त्रय के आनन्द भाष्यों का अध्ययन करने लगे। एक दिन श्री मदाचार्य पाद को अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में देख आपने प्रार्थना की, प्रभो! श्री मुख से संक्षेप में कुछ ऐसा उपदेश सुनने की की इच्छा हो रही है कि जिसमें भाष्य त्रय में वर्णित विषय भी संक्षेप में समझ में आजाय और हम श्री चरणाश्रित श्रीवैष्णवों के नित्य नैमित्तिक कार्यों (काल क्षेप) का भी समावेश हो। आचार्य चरण ने आज्ञा दी तुम प्रश्न करो हम उन्हीं का उत्तर देंगे, जिससे सब विषय तुम्हारे समझ में भी ठीक से आवेगा और भविष्य के श्री वैष्णवों का मार्ग दर्शन भी होगा। श्रीचरणों की आज्ञा से आपने दश प्रश्न किये और श्री आचार्य देव ने उन विषयों पर संक्षेप से प्रकाश डाला। उस उपदेश को श्री अनन्तानन्दाचार्य स्वामी ने लिपिबद्ध कर लिया, वही निबन्ध श्रीवैष्णव-मताब्ज-भास्कर के नाम ने प्रसिद्ध है।

कुछ दिन के पश्चात् आचार्य चरण ने आज्ञादी कि यह भारत का विप्लव काल है, इस समय समस्त देश में विधर्मी विदेशियों के द्वारा धर्म ग्लानि उपस्थित है, उसको दूर करना तुम सब का कर्तव्य है, अतः तुम दक्षिण भारत की यात्रा करो। वहां त्रिचनापल्ली पर मुसलमानों का अधिकार हो गया है, अब वे श्री रंगम पर चढ़ाई करना चाहते है, अतः तुम आज ही योग बल से वहां उपस्थित होकर इक्ष्वाकुकुल–पूजित श्री रंग विग्रह की रक्षा करो। श्री आचार्याज्ञा के

अनुसार आप तुरन्त ही श्री रंगनाथ पहुचे तो ज्ञात हुआ कि श्रीविग्रह तिरुपति ले जाये गये हैं आप, भी तुरंत तिरुपति पहुँच गये। वही श्री वेदान्ताचार्य जी मे समागम हुआ, उनने कहा स्वामिन् ! हम दाक्षरणात्यों ने शास्त्र से लडवाले जैन बोद्यों आदि से तो धर्म की रक्षा की परन्तु जनबल शस्त्रबल और सिद्धिबल के अभाव में इन क्रूर कर्मा अत्याचारियों से रक्षा नहीं बन पड़ रही है। आपने कहा घबड़ाइये नहीं! श्री राम कृपा से सब कुछ होगा, और आपके प्रभाव से उसी दिन वहां के यवन शासक मलिककाफर को रात में सोते समय पैगम्बर मोहम्मद साहबके दर्शन हुए और यह हिदायत मिली "खूं रेजियांबन्दकरो अल्लाह एक है, सब जगह और सब में रहता है। जो मुसलमान होकर किमी का दिल दुखाता है उसको अल्लाह कभी माफ नहीं करता" इस स्वप्न का उसपर ऐमा प्रभाव पड़ा कि वह नंगे पीरों आपके पास आया और नम्रता पूर्वक स्वप्नका सब हाल कह कर कहने लगता अब आप जो हुक्म देंगे उमकी तमील होगी। आपने कहा तुमको मोहम्मद साहब ने सब कुछ कहनो दिया, मैं भी वही कहूंगा कि किसी पर जुल्म नही करना चाहिये, मुल्क और माल के लिये जुल्म करके अपने ही मजहब करो बदनाम नहीं करना चाहिये। खुदा एक है। सभी मजहब उसी के पास पहुंच ने के रास्ते ही तो है अतः दूसरे मजहब के पीर पैगम्बरों की उसी तरह से इज्जत करनी चाहिये जिस तरह से अपनों की। मलिककाफूर ने माफी मांगते हुए कहा "अब में राज खुदाई से वाफिक हो गया, अब तक जो हो गया उसे माफ कर दीजिये. अब से मेरे लिए मन्दिर और मस्जिद दोनों बराबर काबिले ताजीम होंगे।

आपकी पाक हस्ती ने यह करिश्मे दिखलाये है, वरना मैं इस काबिल कहां था कि रसूले अल्लाह को ख्वाब में देखता।" नवाब ने इसीके अनुसार घर जाकर घोषणा कर दी और दक्षिण भारत में अमन चेन हो गया।

इस यात्रा में आपने अनेक भक्तों के कष्ट दूर किये, अनेकों को प्राण दान मिला, अनेक प्रेमी भक्तों को भगवद्दर्शन का आनन्द मिला, इस प्रकार भक्त समूह को लौकिक एवं पारमार्थिक आनन्द प्रदान करते हुए आप पैदल ही काशी पुरी को लौट आये। कुछ दिन श्रीमदाचार्य चरण में निवास हुआ फिर श्रीमदाचार्य चरण की आज्ञा से पांचाल देश में श्री वैष्णव धर्म के प्रचारार्थ पधारे और वहां से अपने अवतार कालिक समय की समाप्ति समीप जान इष्ट भूमि श्री अयोध्यापुरी पधार आये। श्री अवधपुरी में श्री सरयूपुलिन में बिहार करते हुए एक दिन आपको चारों चक्रवर्तिकुमारों के घोड़ों के उपर सामने से आते हुओं के दर्शन प्राप्त हुए और इसी सरयू पुलिन में आपने अपनी लोक यात्रा संवरण की। श्री सरयूजी में गोता लगाकर एक राजहंस आपके पास आया जिसकी पीठ पर सबार हो आप श्री साकेत धाम को पधार गये।

प्रकाशकः–जानकीदास श्रीवैष्णव, श्रीहनुमानवाटिका, श्रीअयोध्याजी ।
व्यवस्थापकः–श्रीवैष्णव-साहित्य-संस्थान, श्रीरामवल्लभाशरणाश्रम, आगरा रोड, जयपुर ।

❀ श्रीसीतारामौ विजयेतेतराम् ❀

❀ भगवते बोधायनाय श्रीपुरुषोत्तमाचार्याय नमः ❀

❀ आनन्दभाष्यकारजगद्गुरुश्रीमद्भगवद्रामानन्दाचार्याय नमः ❀

❀ जगद्गुरुभगवत्पादश्रीसुरसुरानन्दाचार्याय नमः ❀

श्रीरामानन्दपीठपरपर्याय श्रीसुरसुरानन्दद्वारपीठसंस्थापक

जगद्गुरुश्रीसुरसुरानन्दाचार्यस्वामी प्रणीतः

श्रीमैथिलीमहिमस्तवः

* मङ्गलाचरणम् *

आनन्दभाष्यकृद् रामानन्दं रामं च मैथिलीम् ।
नत्वा सुखाय कुर्वेऽह मैथिलीमहिमस्तवम् ॥
सीताकान्तसमारब्धां श्रीबोधायनमध्यमाम् ।
रामानन्दार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

महीमाता मातस्तव जनकराजः प्रिय पिता
पतिः पूर्णो रामो रघुकुलमणिः कारणपरः ।
मनुः साक्षात्तेऽस्ति श्वशुरक दशस्यन्दनतनु -
र्विभर्तारो विश्वं सुभरतयमा देवरवराः ॥१॥

न्यायव्याकरणातोर्थ पंडितराजेश्वर महान्तश्रीकपिलदेवाचार्यजीकृत

श्रीमैथिलीमहिमप्रभा भाषाटीका

श्री मैथिलीपदाम्भोजं रामं ब्रह्म गुणाकरम् ।
वन्दे सूत्रकृतं व्यासं वृत्तिकृत्पुरुषोत्तमम् ॥ १ ॥
आनन्दभाष्यकर्तारं रामानन्दं यतीश्वरम् ।
नत्वा सुरसुरानन्दं कुर्वेऽहं महिमप्रभाम् ॥२॥

हे माता! आपकी माता पृथिवी है और पिता श्रीविदेहराज जनकजी हैं, आपके स्वामी रघुकुल शिरोमणि पूर्ण ब्रह्म परमात्मा उत्पत्ति स्थिति प्रलय के परात्पर कारण श्रीरामजी हैं। श्रीमनु महाराज के साक्षात अवतार स्वयं श्री दशरथजी जिनका रथ दशों दिशाओं में अबाधित गति से चलता था आपके श्वशुर हैं और विश्व का भरण पोषण करने वाले श्री भरत जी ज्येष्ठ देवर हैं ॥ १ ॥

हनूमाँस्ते दासः कुशलवसुसूनू भगवति
विधिर्विष्णुः शम्भः सदयितमभीप्सन्ति भ्रुकुटिम् ।
कवीन्द्रा ये केऽपि त्वदमलगुणान् संकवयितुम्
न शेकुः सत्वस्थाः कथमहमणुः स्वल्पधिषणः ॥२॥

हे भगवति! श्री हनुमानजी आपके दास हैं, लव और कुश आपके सुपुत्र हैं, सपत्नीक ब्रह्मा विष्णु महेश आपकी कृपा दृष्टि चाहते रहते हैं। महासत्वशाली कविराज भी आपके जिन निर्मल गुणों को नहीं गा सकते हैं उनको मैं स्वल्प बुद्धि वाला कैसे बखान कर सकता हूं ॥२॥

तथापीत्थं सीते ! सरसरचनाभावरहितः
पुनामि त्वां गायन् निरवधिगुणे ! गौरवगिरा ।

निजात्मानं धृष्टो धरणिशुभपुत्रि! प्रचपलो
न दम्यः शोभेतन्वधि जननि धार्ष्ट्यं प्रविदधत् ॥३॥

हे निरवधिक गुण शालिनी भगवति सीते! सरस रचना भाव से रहित मैं गौरव वाणी से आपके गुणगान को गाकर अपनी आत्मा को पवित्र करता हूं। अतः हे क्षमा पुत्रि सीते! मैं धृष्ट और चपल हूं परन्तु माता के सन्मुख धृष्टता करने से बालक दमन करने योग्य नहीं ठहरता प्रत्युत शोभा देता है ॥ ३ ॥

तवैश्वर्य्यादीशो विधिरपि विधेयो जनिविधौ
रमाकान्तः कल्पः करकमलकौशल्यसहितः।
न कामः कान्तस्ते कमनकलकान्त्या बिरहितो
जगद् भव्य भूतं भवति च समग्र त्वदलसे ॥४॥

हे आलस्यशीला माता! कल्प के आदि में आपके ऐश्वर्य से ही कर कमल की कुशलता युक्त होकर ब्रह्मा विष्णु महेश जगत की उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय कर्मों में नियुक्त हैं। हे माता! तुम्हारी कान्ति से रहित कामदेव भी सुन्दर नहीं लगता है। हे माता! यह समग्र जगत आपसे ही भव्य हुआ है और होगा ॥ ४ ॥

महाब्धिगाम्भीर्यं नगपतिरसौ स्थैर्य्यमतुलं
जगद्भानुर्भानुं विधुरपि महाह्लादकगुणम्।
महाकाश नित्यं सुबृहदवकाशन्तु सुलभ
लभन्तेऽमी त्वत्तो बलमपि मरुद्देव बलवान् ॥५॥

हे माता! महोदधि गम्भीरता को, पर्वतराज अतुल स्थैर्य को, सूर्य प्रकाश को, चन्द्रमा महा आह्लादक गुण को, महाकाश नित्य सुलभ

बृहद अवकाश को तथा बलवान मरुतदेव बल को आप से ही प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥

समीहन्ते सन्तः सरसिजपदं श्रीशवसतिं,
विगाढुं प्रागाढैरभिनवसुभावैरहरहः ।
समग्रैर्योगैश्च श्रुतिविविधशास्त्रैर्यदटनैः
समीहेऽहं तत्ते निजशिरसि वोढु शरणदम् ॥६॥

हे माता ! सन्त लोग श्री और श्री के स्वामी के वासस्थान स्वरूप महाऐश्वर्यशाली आपके जिस चरण कमल में प्रतिदिन प्रगाढ़ नवीन सुन्दर भावों के, समग्र योगों के, वेद तथा विविध शास्त्रों के और तीर्थ-यात्राओं के द्वारा निमग्न रहना चाहते हैं, अशरण जनों को शरण देने वाले आपके इन चरण कमलों को मैं निजशिर से वहन करना चाहता हूं ॥६॥

कदा पायम्पायं त्वदमलयशः कर्णपुटकैः
कदा ध्यायं ध्याय छविनिधिवपुः शान्तमनसा ।
कदा गायं गायं श्रुतिशिरसि दीप्तां त्वदभिधाम्
विलज्जः सम्मग्नः पुलकिततनुः श्याममहरहः ॥७॥

हे माता ! कब कर्ण पुटों से तुम्हारे निर्मल यश को पी पी करके, कब शान्त मनसे छवि के निधि स्वरूप तुम्हारे श्रीअंग का ध्यान कर करके तथा कब श्रुति शिरोभाग अर्थात् वेदान्त में प्रकाशित तुम्हारे नाम को गा गा करके मैं प्रतिदिन लज्जा रहित हर्षित और पुलकित शरीर वाला होऊँगा ॥ ७ ॥

कटाक्षाद् यस्यास्ते शतशतभवान्यो विधिसुताः
समग्रा देव्यस्तास्त्रिभुवनविरूढाः सुमनसः ।

प्रजायन्ते पद्मा भुवि जलधिपत्न्यो बहुविधाः
कथंकार त्वाहं कथय ननु शक्ष्यामि गदितुम् ।।८।।

जिनके कृपा कटाक्ष से सैंकड़ों भवानी तथा सरस्वती और त्रिभुवन में जितने सुन्दर मनवाली देवियां हैं वे स्व स्व पदारूढ होती हैं, जिनकी कृपा कटाक्ष से इस पृथिवी पर नदियां बहुत तरह के कमलों को प्रकट करती हैं, ऐसी प्रभावशालिनी कीर्ति वाली आपका वर्णन करने में मैं कैसे समर्थ हो सकूंगा। यह आपही कहें ।। ८ ।।

यतो जातो विश्वः पुनरपि च रक्षाऽस्य भवति
लयोऽप्यन्ते यत्र त्रिभुवनपरं बीजमतुलम् ।
यदेयाहुः सांख्याः श्रुतिरथचरा योगकलनाः
कणादन्यायस्थाः पुनरपि च जैमिन्यनिरताः ।। ९ ।।

प्रगल्भाः पूर्णास्थाः परपदगता मोक्षपरकाः
प्रवक्तारः श्लाघ्याः शरणदशुभाः शान्तमुनयः ।
अजादीन् ते ते यां निजनिजमतौ वाचिकुशला-
स्तदेवास्मत्सीता निमिसुकुलभूता धरणिजा ।।१०।।

जिससे यह विश्व उत्पन्न हुआ है, जिससे इसकी रक्षा होती है और अन्त में जिसमें लीन होता है, जो त्रिलोकातीत तत्व एवं अतुल बीज है, जिसको सांख्य शास्त्री, वेदान्ती, योगी, नैयायिक, मीमांसक आदि आदि परम पद को प्राप्त हुए पूर्ण आस्था एवं कवि प्रतिभा सम्पन्न कुशल व्याख्याता शान्त मुनिगण अपने अपने मत के अनुसार अजा आदि कह कर सम्बोधन करते हैं वे ही हमारी निमिकुल नन्दिनी भूमिजा श्री सीताजी हैं ।। ९-१० ।।

जयन्तो वात्सल्यात्तव जननि ! जातश्च कुशली
मृतप्रायः पापी रघुकुलमणेर्मन्त्रशरतः ।
कथाप्येषं तासां कुणपवनितानां हनुमतः
प्रपन्नं किं तर्हि प्रबलबहुपापांश्च दयसे ॥११॥

हे जननि ! रघुकुलमणि भगवान श्रीराम के मन्त्रप्रयुक्त शर से मृत-प्राय हुआ पापी जयन्त तुम्हारी कृपा से ही कुशली हुआ और उन राक्षसियों और श्री हनुमानजी की कथा भी ऐसी ही है । इससे विदित होता है कि आप शरण आने पर प्रबल पापी पुरुषों के ऊपर भी दया करती हैं ॥ ११ ॥

तवेच्छाशक्त्यैते शतधृतिहरीशप्रभृतयः
प्रवर्तन्ते देवा निजनिजकृतौ कर्मसचिवाः ।
कथं तर्ह्येव त्वां दशमुख इयेषाशु विपिने
विशून्ये नेतुं हा! तदपि तव तस्मिन् बहुकृपा ॥१२॥

हे माता ! तुम्हारी इच्छा शक्ति से ही ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश आदि देव निज निज कर्म करने में प्रवृत होते हैं तब हे माता निर्जन वन में रावण आपको शीघ्र हर लेजाने के लिये कैसे साहस कर सकता था ? रावण पर आपकी यह महान कृपा ही हुई है ॥ १२ ॥

धनुर्भक्ता रामः कथयति तु लोको बहुरिति
विदन्त्येव केचिद गुरुजनकृपातः सुविरलाः ।
रहस्यानां गुह्यं यदमलसुकान्तिः सुरसिका
त्वमेवासीर्भक्त्री ह्यशिव शिवचापस्य महतः ॥१३॥

हे माता ! बहुत लोग कहते हैं कि भगवान श्रीरामजी ही शिव चाप

को भंग करने वाले हैं, किन्तु यह रहस्यों का भी रहस्य है, इसे गुरुजनों की कृपा से विरल रसिक लोग ही जानते हैं कि निर्मल कान्ति वाली आप ही महान और भयंकर चाप को तोड़ने वाली थी ॥ १३ ॥

अनीशः स्वल्पज्ञः सुरगुरुवचः पारचरिते !
चरित्रं ते चचलमतिरहं पाप निचयः ।
विगाहे गाधर्वक्रमकतिपयालापरहितो
न वाञ्छेत्को मन्दः कविबरपद गन्तुमनिशम् ॥१४॥

हे सुरगुरु वचनातीत चरित वाली भगवति जानकी जी ! मैं असमर्थ अल्पज्ञ चंचल मति वाला पापराशि तथा गान्धर्व विद्या के थोड़े से आलाप से भी रहित हूं तो भी आपके अति भव्य चरित का अवगाहन करना चाहता हूं । सत्य है श्रेष्ठ कवि के पद को प्राप्त करने की इच्छा कौन करता है ॥ १४ ॥

न यामो हास्यत्वं तवचरितसिन्धोः कणमपि
स्पृशन्तः सन्तोऽपि प्रथमकविकृष्णादिमुनयः ।
अगच्छन्तः पारं निजनिजवचः पावनपरा
जगुर्यत्किञ्चित्ते त्वदमलचरित्राब्धितरगाः ॥१५॥

हे माता ! आपके चरित समुद्र के एक बिन्दु का स्पर्श होने परभी मैं हास्यत्व को प्राप्त नहीं होऊँगा, क्योंकि निज वचन को पावन करते हुए प्राचीन कवि श्री व्यासजी भी आपके चरित सिन्धु के पारको न पाकर तट पर विराजमान रह आपके थोड़े से चरित को ही गासके ॥ १५ ॥

सतीत्वे का त्वादृक् यदसि मुनिपत्न्य प्यपचिता
यया ते लंकास्थे हनुमति विनापोऽयमनलः ।
प्रचण्डः शीतांशोः सदृश भवदत्रापि निपुणम्
न जन्ये वीरांस्त्वं लवकुशहतान्जीवयसि नु ।।१६।।

हे माता ! सतीत्व में तुम्हारे समान दूसरी कोई नारी नहीं है। क्योंकि आप मुनि पत्नियों से भी सम्मानित हैं। तुम्हारे सतीत्व के प्रभाव से लंका में अग्नि लगाई तब श्री हनुमानजी को प्रचंड अग्नि चन्द्र किरण के समान लगी। लवकुश के द्वारा मारे जाने पर उन लंका विजयी मृत वीरों को आपने ही अपने सतीत्व के प्रभाव से जिला दिया था ।। १६ ।।

यदेहा रन्तुन्ते रचयसि बहूंल्लोकनिचया-
ननन्तेष्वण्डेषु श्रुतिमुख हरीशांश्च विपुलान् ।
पुनः क्रीडां कृत्वा यमयसि निजात्मन्यहह ते
बतेदं सर्वं किं पृथुक इव मोहाय कुधियाम् ।।१७।।

हे माता ! जब तुम्हारी इच्छा क्रीड़ा करने की होती है तब बहुत से लोकों के समूह की तथा अनन्त ब्रह्मांडों में अनन्त ब्रह्मा विष्णु महेशों की रचना करती हो और जब तुम्हारी इच्छा क्रीडा समाप्त करने की होती है तब सबको अपने आप में संयमन कर लेती हो। अर्थात लीन कर लेती हो। परन्तु ये सब अज्ञानी बालक के सदृश कुत्सित बुद्धि वाले पुरुषों में भ्रम का ही कारण होता है ।। १७ ।।

अकल्पः कल्याणे कुटिल कलिसम्पृक्त विमनाः
अतो न रोचन्ते यमनियमयागादि विधयः ।

तपस्तीर्थं त्यागः सुजनशुभसङ्गः कथमपि
पर मातस्तेऽङ्के शयितुमभिवाञ्छामि निभृतम् ।।१८।।

हे माता ! कलि की कुटिलता से युक्त खिन्न मन वाला मैं अपना कल्याण साधने में असमर्थ हूं । मुझे संयम, नियम, यज्ञादि विधि, तपस्या, त्याग, तीर्थ, सज्जनों की सत्संगति आदि किसी भी प्रकार से अच्छे नहीं लगते हैं तोभी तुम्हारी गोद में सोने के लिए मैं सतत इच्छा करता हूँ ।। १८ ।।

असूयासन्तानः सततशठधीः कुण्ठितगतिः
कदर्य्यः कामात्मा कलुषितकथागारचपलः ।
कदन्नाशी वासी कुणपवसतीनामनुपलं
तथापोच्छामि त्वां खर इव पुरोडाशमशितुम् ।।१९।।

हे माता ! यद्यपि मैं इर्ष्या का पुत्र हमेशा हठ स्वभाव, अवरुद्ध गति, कायर, कामी, दूषित बातों का भंडार, चंचल, कुत्सित अन्न खाने वाला तथा राक्षसों के ग्राम में रहने वाला हूँ, तथापि जैसे गधा यज्ञीय भाग को खाने की इच्छा करे वैसे ही मैं भी आपकी प्राप्ति की इच्छा करता हूँ ।। १९ ।।

वदान्यः सम्मान्यस्तव हि जनकत्वेन जनकः
शतानन्दो लेभे गुरुरपि शतानन्दविभवम् ।
पदाक्षः प्रत्यक्षीकृतमिदमशेषं सपतिकम्
किमन्यत्संसर्गादखिलपति रामोऽपि शुशुभे ।।२०।।

हे माता ! तुम्हारे पिता होने के कारण ही महाराजा जनक को सम्मान मिला, शतानन्दजी ने तुम्हारे गुरु होने से ही शतगुणित

आनन्द एवं वैभव को प्राप्त किया। अनुमान प्रमाण से ईश्वर को जानने वाले अक्षपाद श्रीगौतम ऋषि ने परमेश्वर तुम्हारे पतिदेव के साथ ही इस समस्त जगत का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया। दूसरा तो क्या अखिल ब्रह्माण्ड नायक भगवान श्रीराम भी तुम्हारे संसर्ग से ही अधिक सुशोभित हुए ॥२०॥

पदद्वन्द्वाम्भोजं प्रखरनखरज्योतिरचना
　　दनन्ताण्डेष्वेते दिवसमणयो भान्ति बहुलम्।
मुखज्योत्स्नाज्जाता अति मधुर शीतांशव इमे
　　तथा भान्ति स्वे स्वे नहि किमपि चित्रं जननि तत्॥२१॥

हे माता ! तुम्हारे दोनों चरण कमलों के नखों की प्रचण्ड ज्योति को प्राप्त कर अनन्त ब्रह्माण्ड के ये अनन्त सूर्य अत्यन्त प्रकाशमान हो रहे हैं और मुख की चन्द्रिका से ये अति मधुर अनन्त चन्द्र उत्पन्न हुए अपने अपने ब्रह्माण्डों में भासमान हो रहे हैं। हे जननी ! इसमें कोई भी आश्चर्य नहीं है ॥ २१ ॥

महिम्नः शेकुः के तव जननि गन्तुं समवधिं
　　ह्यसक्ता वाल्मीक्यादय इह तु तत्रापि विधयः।
महाब्धौ यादांसि ध्वनिगुणकखे रेणव इव
　　निमज्योन्मज्जन्ति त्वयि मुहुरमी वान्ति पवनात्॥२२॥

हे माता ! तुम्हारी महिमा की अवधि तक जाने में कौन समर्थ हुआ है। वाल्मीकि व्यासादि भी असमर्थ रहे हैं। वे भी समुद्र में जल जन्तुओं के समान डूबते उतराते हैं तथा ध्वनि गुणक आकाश में पवन से उडाये धूलि कणों के समान उडते हैं ॥ २२ ॥

न माता तातो मे नहि परिजनो बन्धुरपि मे
न मित्रं पूर्णार्थं दयितदयिताप्यस्ति नहि मे ।
कुतः पुत्रः पुत्री नहि च भगिनि प्रेमबहुला
विना त्वां मे मातस्त्वमपि सकलं किन्तु सुखदे ॥२३॥

हे माता ! इस संसार में आपके सिवा न मेरी कोई माँ है न पिता, न परिवार, न भाई और न पूर्ण अर्थ को प्रदान करने वाले मित्र हैं। न अत्यन्त प्रिय से भी प्रिय स्त्री ही है तो पुत्र और पुत्री क्या होंगे। न अत्यन्त प्रेम करने वाली बहन ही है। हे सुख देने वाली माँ ! हमारे तो सब कुछ तुम ही हो ॥ २३ ॥

कलाहीनः काव्ये प्रचलति मतिर्मे नहि तथा
न वेदान्ते स्नातः सततविषयाश्लिष्ट कुमतिः ।
न योगे भोगे वा क्वचिदपि च शक्तो दृढतरं
निमग्नो दुःखाब्धौ कथय किमु कुर्य्यां कलुषितः ॥२४॥

हे माता ! मैं कलाहीन हूं, मेरी बुद्धि काव्य रचना में काम नहीं करती, हमेशा विषयासक्त तथा कुत्सित होने से वेदान्त में निष्णात भी नहीं हूँ। अल्प बल होने से न योग ही कर सकता हूँ, न भोग ही कर सकता हूँ। अतः हे माँ ! अब आपही कहो, दुःख समुद्र में डूबा हुआ पापी मैं क्या करूं ? ॥ २४ ॥

न विद्याव्यासङ्गी नहि मधुरसङ्गीतकुशलो
न मन्त्रे तन्त्रे मे क्वचिदपि रुचिर्याति निपुणम् ।
न चास्था कुत्रापि प्रणतसुखदे ! मेऽस्ति विपुला
कया रीत्या नेया जननि दिवसा दुःखबहुलाः ॥२५॥

हे माता ! मैं न तो विद्या व्यसनी हूं न मधुर संगीत में ही कुशल हूं। मन्त्र तथा तन्त्र विद्या में भी मेरी रुचि नहीं होती है। हे प्रणत जनों को सुख देने वाली माँ ! मुझे किसी में पूर्ण आस्था भी नहीं है। हे माता! ये महान दुःख वाले दिन मैं किस प्रकार बिताऊँ ॥२५॥

विरामस्त्वाशानां क्वचिदपि भवेन्मे जननि किम्
दुराशा बाधन्ते लवसुखकृते मां बहुतरम् ।
मृगाः पाथो भ्रान्त्या जहति निजजीवं मरुभुवि
मना राज्ये प्राज्येऽहमपि मरणं यामि च तथा ॥२६॥

हे माता ! मेरी आशाओं का कभी अन्त होगा कि नहीं? थोडे सुख के लिए मुझे दुराशा बहुत बाधा देती है। जैसे मरु भूमि में जल की भ्रान्ति से मृग अपने प्राणों का त्याग करदेता है वैसे मैं भी अपने अत्यधिक मनोराज्य से मरण को प्राप्त होऊँगा ॥ २६ ॥

न कञ्चित्पन्थानं पथि विचलितः पान्थ इव हा
महारण्ये घोरे भयदबहुजीवाकुलतमे ।
निशायां तत्रापि क्षयितविधुकायां पुनरपि
बिना त्वां दिङ्मूढो जगति किल पश्यामि शरणम् ॥२७॥

हे माता ! इस संसार रूपी महा भय दायक हिंसक प्राणी युक्त महान जंगल में पथ भूले हुए पथिक की तरह मैं पथ भूल गया हूँ। उसमें भी चन्द्र रहित रात्रि में दिशा ज्ञान रहित मैं इस संसार तुम्हारे सिवा अन्य किसी को भी शरण लेने योग्य नहीं देखता हूँ ॥२७॥

कदाऽहं सीतेति त्वदमलशुभ नाम निगदन्
परप्रेम्णा सान्द्रं पुलकिततनुः सन्ततसुखम् ।

विलज्जः सम्मग्नो नयनजजलेनाञ्चितमुखो
पुनामि स्वात्मानं रसदरलना ग्राह्यमभवम् ॥२८॥

हे माता ! मैं कब तुम्हारे निर्मल मंगलमय श्री सीता नाम को प्रेम पूर्वक निरन्तर जपते हुए रोमान्चित शरीर, लज्जा से रहित, सतत सुख मग्न होता हुआ नेत्रों में आनन्दाश्रु से युक्त मुख वाला होकर भय रहित अपनी आत्म को पवित्र करूँगा ॥ २८ ॥

परब्रह्मस्नातः परसुखरतो मैथिलनृपः
सुतासौख्य लब्धुं छविनिधिमहासारमथिताम् ।
उपासाञ्चक्रे त्वां जलधितनयां नो विधुसुता
मपः कौपीःकोऽपि प्रपिबति हि गाङ्गीः परिहरन्॥२९॥

हे माता ! जो मिथिला के राजा जनक ब्रह्मानन्द में स्नात तथा परम सुख में लीन रहते थे, उन्होंने पुत्री के सुख को प्राप्त करने के लिए सुन्दरता के सागर को मथ कर के महासार रूप तुम को प्राप्त किया। उपासना के समय उन्होंने लक्ष्मीजी तथा सरस्वतीजी को स्वीकार नहीं किया, क्यों कि गंगा जल को छोडकर कौन कूप का जल पीवे ॥ २९ ॥

अहं मन्ये विद्युत्तव पुरापीताङ्गजकला ।
तथा मेघः श्यामो विकचकचकृष्णत्वविभवः ।
तथैवं यस्यास्त्वद् ह्यजनि सकलो भूतनिबहः
किमास्ते यस्य त्वं जननि जनयित्री न भवसि॥३०॥

हे माता ! मैं मानता हूँ कि विद्युत तुम्हारे ही पीत अंग से उत्पन्न कला है और श्याम मेघ तुम्हारे केशों की श्यामता का वैभव है । हे

माता ! आपसे ही यह सकल भूत समुदाय उत्पन्न हुआ है। हे माता! ऐसा कौन है जिसकी उत्पादिका (जननी) आप न हों ।। ३० ।।

समर्थो रामोऽपि श्रुतमिथिलरङ्गांगणगतो
बभञ्जायासेन त्रिपुरतृणवहेरजगवम् ।
न यत्तोले शेकुः शतनियुतभूपाः कथमपि
तदेवोज्जह्रे त्वं कमलमिव हस्ती त्वर्पाचितौ ।।३१।।

हे माता ! समर्थ श्रीरामजी भी धनुष यज्ञ सुनकर मिथिला की रङ्गभूमि में आये और परिश्रम से त्रिपुर को नाश करने वाले भगवान शंकर के धनुष को तोडा । जिस धनुष को सहस्रों राजा एक साथ मिलकर भी किसि प्रकार उठा नहीं सके, उस धनुष को तुमने उसी प्रकार उठा लिया था जैसे हाथी कमल के फूल को ।। ३१ ।।

त्वयैवाजौ राजा रणनिपुणभूपान् पुरगतान्
विजिग्ये त्वत्कामान् सततमभियुध्यन् बहुसमाः ।
विदेहस्तातस्ते तदपि न किलाश्चर्यमतुलम्
ह्यनन्ता सर्वार्था त्वमसि नृषु शक्तिर्बहुमुखी ।।३२।।

हे माता ! तुम्हारे पिता श्री विदेहजी ने बहुत वर्षों तक निरन्तर युद्ध करते हुए तुम्हारी कामना से जनकपुर आए हुए रण निपुण भूपों को युद्ध में तुम्हारे द्वारा ही जीता है । वह भी कोई आश्चर्य नहीं है, क्यों कि अनन्त तथा सर्वार्थ रूप तुम ही मनुष्यों में बहुमुखी शक्ति रूपा हो ।। ३२ ।।

न दोग्ध्रीकामानां तव जनुषि सा पायितवती
पयो दिव्यं पातुं यत इवमृषेर्धेनुरभवत् ।

प्रमाणन्त्वद्यापि त्वदमलपितुर्दिव्यनगरे
पुरा दुग्धं पश्चान्मतिरितिशुभख्यातिकनदी ।।३३।।

हे मा! तुम्हारे जन्म समय में कामधेनु ने तुम्हें दूध नहीं पिलाया, क्योंकि वह तुम्हें दिव्य दूध पिलाने के लिये ऋषि की गाय बनी थी। जिसकी प्रमाणभूता तुम्हारे पिता के नगर में आज भी दूधमती नदी बह रही है ।। ३३ ।।

अकल्पः कल्पानो कह इभगते ! कञ्जकरयोः
पुरो वाञ्छादाने व्रजति मुनिधेनुर्न समताम् ।
यतो नो द्वावेतावमृतपदमोक्षं वितरतः
प्रिया भक्तास्तेऽतो त्वद्दृत इह वाञ्छन्ति नहि तौ ।।३४।।

हे गजगामिनी माता! अभीष्ट दान देने में कल्पवृक्ष तथा मुनिधेनु (नन्दिनी आदि) तुम्हारे कर कमलों के समान नहीं हो सकते, क्यों कि ये अमरत्व (मोक्ष पद) को नहीं दे सकते । इसलिए भक्त जन तुमको छोडकर उनको नहीं चाहते हैं।। ३४ ।।

स्पृशामो नो द्रव्यं नहि च निवसामः स्थिरतया
धनाढ्याद् वाञ्छामः किमपि नहि मार्तनिजकृते ।
अटामः पादाभ्यां विषमगहने वाहनमृते
तथाप्यस्मान् कामस्त्यजति न पलं हन्त कुटिलः ।।३५।।

हे माता ! मैं द्रव्य को नहीं छूता न स्थिर होकर एक जगह निवास ही करता हूँ। अपने लिए किसी धनवान से किसी वस्तु की याचना भी नहीं करता। वाहन के बिना ही भयङ्कर घोर वन में पैदल भटकता

हूँ। तो भी हे माता ! यह कुटिल काम पल भर के लिए भी मुझको नहीं छोडता, यह महान् दुःख है ।। ३५ ।।

क्षमात्वं त्वत्तः क्षमा जलमपि जलत्वं हुतवहः
प्रदीप्तिं सारत्व मरुदपि महत्वञ्च गगनम् ।
सुरत्व वै देवो नर इह तु लेभे हि नरतां
न किञ्चिद् यन्मातस्त्वदिह किल तत्तां न लभते ।।३६।।

हे माता ! पृथ्वी पृथ्वीत्व को, जल जलत्व को, अग्नि प्रकाश को वायु सरण को, आकाश महत्व को, देव देवत्व को तथा मनुष्य मनुष्यत्व को तुमसे ही पाते हैं। जगत में ऐसा कोई नहीं जिसने अपना तत्व आपसे न पाया हो ।। ३६ ।।

कदाचित् पासि त्वं शचिपतिमुखान् देवनिचयान्
कदाचित् बिश्वस्मिन् दिति खलसुतान् दण्डयसि च
व्यवस्थां चैतादृक् तव तु सकला शोभनतरा
न माता पुत्राणां क्वचिदपि च दुःखाय भवति ।।३७।।

हे माता ! कभी तुम इन्द्र आदि देवताओं की रक्षा करती हो तो कभी दिति के दुष्ट पुत्र दैत्यों को दण्ड देती हो। तुम्हारी यह सब व्यवस्था सब प्रकार से शोभनीय है । क्योंकि माता कभी भी पुत्र के दुःख के लिये नहीं होती (भाव यह है कि पाप कर्म करने वाले को दंड दिये जाने से ही वह पाप से मुक्त होता है तथा आगे भी पाप से बचता है। इससे) पापी दैत्यों को जो दंड की व्यवस्था हैं वह भी शोभनीय ही है।। ३७ ।।

भुजस्थौ केयूरौ रविकरनिभौ कान्तिनिलये
श्रुतिस्थौ ताटङ्कौ भुवनकमनीयौ सुकलितौ ।

ललाटे कस्तूरीतिलकममलं केशरयुतं
मनोज्ञे ! मौलौ ते द्युतिमहितचूडामणिरलम्।।३८।।

हे कान्ति निलया मातेः ! तुम्हारी भुजाओं में सूर्य की किरणों के समान भुजबन्द हैं तथा कर्ण में स्थित जो कर्ण फूल हैं वे जगत में सबसे सुन्दर माने गये हैं। हे सुन्दरी ! आपके ललाट पर केसर से युक्त निर्मल कस्तूरी का तिलक है एवं मस्तक में महान कान्ति से देदीप्यमान चूडा-मणि शोभित है ।। ३८ ।।

पदे वक्षो हस्तौ मुखमपि च चित्रावलिमया-
न्यभून्यङ्गानि क्षमाक्षमशुभसुते शान्तिनिलये।
भवन्त्यस्थाः कर्त्र्यो जलधिविधिहेमाद्रितनया
अतश्चित्रावल्याः सुरभिरिव भातीह कनके ।।३९।।

हे परम समर्थ मंगलमयी शान्ति भंडार भूमितनये ! आपके चरण वक्षःस्थल हाथ तथा मुखकमल आदि अंग (मृगमद चन्दन केशर यावक आदि से चित्रित) चित्रावली मय है। इस चित्रावली की रचना करने वाली लक्ष्मी, सरस्वती तथा पार्वती हैं। यह चित्रावली आपके अंगरूपी स्वर्ण में सुगन्ध के सदृश शोभापाती है ।। ३९ ।।

भजन्तः शर्वादीन् जननि! जनवृन्दा निशिदिनम्
लभन्ते नो तेभ्यो निजमभिमतंदेवि नितराम्!
परं प्राप्ता त्वत्तो पदमुषु सुशक्तिर्बहुमता।
ह्यशक्तः कःकुर्यात् किमपि करणीयं कथय मे ।।४०।।

हे माता ! बहुत लोग शिवादिकों का भजन करते हैं, किन्तु उनसे अभीष्ट नहीं पाते, क्यों कि वे सब भी शक्ति तो आपसे ही पाते हैं।

आपके शक्ति दान के बिना तो वे लोग अशक्त ही हैं। कहो माँ! अशक्त क्या कर सकते हैं ॥ ४० ॥

त्वया रामं ब्रह्मा विरहितमलं देवि सुयुगे ।
पुरोपासाञ्चक्रे प्रभुरपिकृशो राघवमणिः ।
समायातो दातुं वरमभिमतं तत्र जननि!
न तच्चित्रं पुष्टिस्त्वमसि किल तता नवतनौ ॥४१॥

हे देवि ! पहले सत्युग में ब्रह्माजी ने आप से रहित (इकेले) श्रीरामजी की उपासना की थी। तब सर्वेश्वर होते हुये भी श्रीरामजी कृषता (शक्तिहीनता) को प्राप्त होकर वरदान देने आये थे। इसमें आश्चर्य ही क्या है क्यों कि आप ही तो श्रीरामजी की पुष्टि (शक्ति) हैं ॥ ४१ ॥

न मातुर्वात्सल्यात्परमिह तु तातस्य भवति
यतो शास्त्रे वेदे प्रथमपदमभ्येति जननी ।
जनन्याः सादृश्यं भजति खलु लोके क इतरो
जनन्यो जानन्ति प्रसवजनितदुःखनिवहम् ॥४२॥

हे माता ! माता के समान वत्सलता पिता की भी नहीं होती, अतः वेद शास्त्र में भी माता का प्रथम स्थान है। माता की समानता इस लोक में दूसरा कौन प्राप्त कर सकता है? क्यों कि प्रसव जनित दुःख समूह को माता ही अनुभव करती है ॥ ४२ ॥

प्रजादक्षाद्दक्षात् पितुरपि न सत्कारमगम-
न्महायागे चार्षे सकलजननी सा शिवसती ।
परं लेभे मातुर्विदितमिति लोकेषु निपुणम्
पिताप्यल्पत्वं यात्यहह जननीतः क इतरः ॥४३॥

हे माता ! दक्ष प्रजापति के आर्ष महायज्ञ में जगज्जननी सती जी गयी, तब केवल माता ने ही सत्कार किया। पिता दक्ष ने तो पूछा तक नहीं, अतएव सती ने अपने योग बल से अग्नि प्रकट कर प्राणों का त्याग किया। यह बात सब लोग पूर्णतया जानते हैं। अतः माता की अपेक्षा पिता में भी जब अल्पत्व देखा जाता है तब माँ के समान दूसरा कौन हो सकता है ।। ४३ ।।

परात्मारामोऽपि श्रुतविनयशीलोऽपि विरहाद्
विसस्मारात्मानं निजमपि विपृच्छन् सहचरम् ।
अहं कस्त्वं चासीह कथय किमर्थं वनमिता
इतीत्थं चित्रं नो यदसि परमाह्लादनकरी ।।४४।।

हे माँ ! प्रख्यात विनयशील परमात्मा श्रीरघुनाथ जी भी आपके विरह में अपने आप को भूल गये थे। सहचर श्री लक्ष्मण जी से पूछते थे कि मैं कौन हूँ ? तुम कौन हो ? और किस कारण से हम बन में हैं? यह भी आश्चर्य की बात नहीं, क्यों कि आप उनकी परमाह्लादिनी शक्ति हैं ।। ४४ ।।

त्वयेदं सत्तावज्जगदिति वदन्ति श्रुतिगणा-
स्तथापि त्वां रामो विमृगयितुकामो बहुतिथम् ।
अशान्तः संभ्रान्तो दिशि विदिशि तान्तो विरहितो
न चार्वाचीनं तन्नु वपुरतिमोदाय भवति ।।४५।।

वेद कहते हैं कि यह संसार आप से ही सत्तावान है (अर्थात् आप चराचर समस्त जगत् में अविच्छिन्नतया व्याप्त हैं) तो भी बहुत अशान्ति और शान्तिपूर्वक चिरकाल तक विरह व्याकुल दिशा विदिशाओं

में भटकते श्रीरामजी आपको खोजते रहे। इसमें भी कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि आपके श्रीअंग का प्रेम श्रीरामजी को अनन्त काल से आनन्द प्रद हुआ है ।। ४५ ।।

पिकानां माधुर्यं त्वमसिकमलानां च मृदुता
महाध्राणां धैर्यं ललितललनानां च सुषमा ।
पयोधेर्गाम्भीर्यं त्वमसि गहनानां गहनता
त्वमेका सर्वत्रं श्रितबहुगुणा भालिजगति ।।४६।।

हे माता ! कोकिला की मधुरता, कमलों की मृदुलता, पर्वतों का धैर्य, सुन्दर ललनाओं की शोभा, समुद्र की गम्भीरता तथा गहन वनों की गहनता आप ही हो। श्रेष्ठ गुणों की आश्रय आप ही सर्वत्र प्रकाशित हो रही हो ।। ४६ ।।

वनानां कुंजानां सुरमुनिवराणां वनभुवां
गजानां कान्तानां स्थलजलचराणांच वचसाम् ।
गिरीणां पुष्पाणां नरपशुशिशूनां च महतां
परा श्री सर्वेषां स्थिरचरजनानां त्वमसि सा ।।४७।।

हे माता ! वनों की, कुञ्जों की, देवताओं की, मुनिवरों की, जलचर थलचर प्राणियों की, पक्षियों की, पर्वतों की, मनुष्यों एवं पशुओं के, बच्चों की अर्थात समस्त चर और अचर संसार की परात्पर श्री (ऐश्वर्य एवं शोभा) आप ही हो ।। ४७ ।।

त्वया सार्धं रामो विपिनमपि मेने बहुसुखम्
परं त्वद्विश्लेषादनुजकपिभल्लूकसहितः ।

अभाङ्क्षीद् दुःखाब्धौ क्वचिदपि न विश्रान्तिमगम
च्छरीरं नो भाति ह्यसुविरहितं भूषणयुतम् ।।४८।।

हे माता ! तुम्हारे साथ में रहकर भगवान श्री राम ने वन में भी अत्यन्त सुख माना और तुमसे विरहित होने पर भ्राताओं तथा वानर भालुओं आदि समस्त परिवार के रहते हुए भी दुःख रूपी समुद्र में डूबे रहे, कभी शान्ति नहीं प्राप्त की। ठीक ही है प्राण के बिना आभूषणों से सुसज्जित रहने पर भी शरीर शोभा को प्राप्त नहीं होता ।। ४८ ।।

त्वयोतायां मातर्मुनिविपिनवाल्मिकिशरणम्
विरामं भोगानां भरत इव लेभे रघुपतिः ।
अयोध्यायां साक्षाद्धनदविभवायामपि वसन्
ऋते भोगप्रस्वाः क इह किलभोगं हि लभते ।।४९।।

हे माता ! आपके श्री वाल्मीकि आश्रम में प्राप्त होने पर कुबेर के समान वैभव वाली श्री अयोध्यापुरी में रहते हुये भी श्रीरामजी को (श्रीराम वन गमन के समय के) श्री भरतजी के समान ही समस्त भोगों से विराम प्राप्त हो गया। भोगों की जननी आपके बिना भोग कैसे भोग सकते थे ।। ४९ ।।

भयास्ते सूर्योऽयं तपति पवनो वाति जलधिः
स्वकीयां मर्यादां त्यजति न दहत्यग्निरखिलम् ।
करोतीन्द्रो वर्षा भयमपि च विभेत्यत्र विपुलम्
भवत्या निर्देशाद् भवति सकलं कौशलयुतम् ।।५०।।

हे माता ! तुम्हारे भय से ही सूर्य तपता है, पवन बहता है समुद्र

अपनी मर्यादा को नहीं छोडता, अग्नि सब कुछ को जलाते हैं, इन्द्र वर्षा करते हैं, भय भी तुमसे भयभीत रहता है। हे माँ ! आपके आदेश से ही सम्पूर्ण कार्य कुशलतापूर्वक चलते हैं ।। ५० ।।

त्वया पुत्र्या पृथ्वी बहुगुणगरिम्णा वसुमती-
पदं प्राप्ता मातः क्वचिदपि भवादृङ् नहि वसु।
वसूनां सर्वेषां त्वमसि जगदेक परवसु
यदीच्छन्ति ब्रह्मा हरिरपि शिवः शान्तमुनयः ।।५१।।

हे माता ! आपके पुत्री बन जाने से ही पृथिवी यथार्थ में गुण गणों की गरिमावाली और वसु(धन रत्न) मती की पदवी को प्राप्त हुई है। आप समस्त वसु (धन रत्न प्रकाश ज्योत्स्ना) में सर्वश्रेष्ठ हैं। अन्य कोई भी वसु आपके समान नहीं हो सकते । आप की प्राप्ति (कृपा) की ब्रह्मा, विष्णु, महेश और प्रशान्त मुनि समूह सभी इच्छा करते हैं ।। ५१ ।।

रुषाहन् साहाय्यात्सगणमधिसख्य दशमुख
कपीनामृक्षाणां जलधिकुणपानां रघुपतिः।
सुशक्ताप्येकायं नहि हतवती तत्र भवतो
विकारो धीराणां स्पृशति पदमप्यल्पमिह नो ।।५२।।

हे माता ! जिस रावण को श्रीरघुनाथजी ने बानर भालुओं, समुद्र एवं राक्षसों की सहायता से मारा है, उसको आप अकेली ही मारने में समर्थ होती हुई भी नहीं मारा, क्योंकि धैर्यवानों को विकार (क्रोध) थोडा भी स्पर्श नहीं करता है ।। ५२ ।।

यदा रामस्तीर्थं जनकनगरं कौशिकयुतः
पदातिर्वश्यात्मा नियतकरणः प्राप समुदम् ।
तदा लेभे त्वादृक् फलमभिरुच कान्तसुखदम्
न तीर्थं किं दत्ते विधिविहितयात्राय हि फलम ॥५३॥

हे माँ ! श्री विश्वामित्र जी के साथ में मन तथा इन्द्रियों को वश कर के आनन्द पूर्वक भगवान श्रीरामजी ने पैदल ही पवित्र श्री जनकपुरी की यात्रा की तब परम सुन्दर इच्छित और सुखदायक आप जैसे फल को प्राप्त किया। विधिपूर्वक तीर्थ यात्रा करने वालों को तीर्थ कौनसा फल नहीं देते ? ॥ ५३ ॥

मुनीन्द्राश्चात्तस्थुर्मुनिजनसभामागतवती
वयोवृद्धा यस्मिन् नृपतिशुभहेतोः स च शुकः ।
तवैवास्ते शिष्यः परतमसुनिष्णातसुखदः
पुराणे मूर्द्धन्ये ह्यपरभवनामापि न जगौ ॥५४॥

हे मातः ! राजा (परीक्षित) के कल्याणार्थ होने वाली मुनिजनों की सभा में जिन के आते ही वृद्ध वृद्ध महर्षि भी सम्मानार्थ खडे हो गये थे, पुराण श्रेष्ठ श्री मद्भागवत् में जिनका पुर्नजन्म न होना (परम पद को प्राप्त हो जाना) वर्णित है, वे परात्पर तत्व (भगवान श्रीरामजी) में निष्णात, एवं नित्य सुख (मोक्ष) के देने वाले श्री शुक मुनि आप की ही शिष्य परम्परा में हैं ॥ ५४ ॥

अनित्यं दुःखाढ्यं जगदिति तु मत्वा सुरसिका
भजन्ते त्वामेव स्वजनपरिवारान् धनमपि ।

विहाय प्रेयान् तान् जनिभृतिकरान् दुःखनिवहान्
मरालो संमिश्रे पिबति हि तु तत्केवलपयः ।।५५।।

हे माता ! जगत को अनित्य तथा दुःख रूप मानकर प्रिय स्वजन, परिवार और धन को त्याग कर परमोत्कृष्ट रस के ज्ञाता जन आपको ही भजते हैं। सत्य है जल मिश्रित दूध में से हंस केवल दूध को ही पीते हैं ।। ५५ ।।

रसज्ञः पादानां तवरसनिधीनां जननि को
भजेदन्यं देवं जलनिधिनिमग्नं नदमिव ।
अतोह त्वामेव प्रतिजनितु याचे प्रविलपन्
न कञ्जानां घ्राता मधुविरहितं जीघ्रति दलम ।।५६।।

हे जननी ! रस को जानने वाला कौन ऐसा होगा जो समुद्र के समान रस के भंडार तुम्हारे चरणों को छोडकर एक छोटे नद के तुल्य अन्य देव का भजन करेगा ? अतः मैं रोता हुआ तुमसे ही याचना करता हूँ। कमल की सुगन्ध को सूंघने वाला (भ्रमर) मधु रहित दल (पत्ते) को नहीं सूंघ सकता है ।। ५६ ।।

अजा जातासि त्व जननि जनहेतोरधिभुवम्
दशास्यस्य भ्राता स जनमभजत् पूवजनुषि ।
अगच्छोलकां तद्पदलभत लकेशपदवीम्
न माता पुत्राणां कृत इह हि दुःख गणयति ।।५७।।

हे माता! अजन्मा होते हुए भी आप अपने जनों के कल्याणार्थ पृथ्वी पर जन्म लेती हो। रावण के भाई विभीषण ने अपने स्वजनों के साथ में पूर्व जन्म में तुम्हारा भजन किया था, आपको लंका में जाने से

उनको लंकेश पद प्राप्त हुआ। इसमें तुम्हें बहुत दुःख सहन करना पड़ा है। ठीक ही है, माता अपने पुत्रों के सुख के लिए अपने दुःख को नहीं गिनती है ॥ ५७ ॥

क्वचित्कान्तिः क्षान्ति क्वचिदसि च शान्तिर्मतिरपि
क्वचिद्भ्रान्तिर्निद्रा क्वचिदसि च दुःखं सुखमपि
अनीतिर्नीतिर्वा क्वचिदसि च सुप्रीतिरतुला
धनं दारिद्र्यं वा त्वमसि सकलं देवि भुवने ॥५८॥

हे माता ! तुम कहीं कान्ति हो, कहीं क्षान्ति (क्षमा) हो, कहीं शान्ति तथा मति हो, कहीं भ्रान्ति तथा निद्रा हो, कहीं दुःख तथा कहीं सुख हो, कहीं नीति अनीति तथा अतुलनीय प्रीति रूप हो और कहीं धन तथा दारिद्रय रुप हो। हे देवि ! सकल भुवन में सब में तुम ही तुम हो ॥ ५८ ॥

इदं सर्वं शास्त्र्या तवहि भवति प्रीतय इह
दयाब्धेर्वात्सल्यात् स्थिरचरजनेष्वेव नितराम्।
न दण्डो मातुस्ते क्वचिदपि तु बालाहितकरो
न माताऽकल्याणी निशिचरजनानामपि क्वचिद् ॥५९॥

हे माता ! शासन करने वाली आपकी प्रीति के लिये ही इस जगत में यह सब कुछ है। दया की समुद्र आप माता का चराचर जगत पर निरंतर वात्सल्य होने से आपका दण्ड कभी अपने बालकों का अहितकर नहीं हो सकता क्यों कि माता तो राक्षसियां भी अपने पुत्रों का अकल्याण नहीं करती हैं ॥ ५९ ॥

सुधार्थं क्षीराब्धिं कथयति ममन्थुर्जन इति
त्वदर्थं मन्येऽह सुरदितिजसंघा बहुतरम ।
विवादे सम्प्राप्ते भवति तु गरिष्ठाऽत्रभवती
विजेताऽऽसोच्छ्रीमानमृतवति दौत्येऽप्यविजयः ॥६०॥

हे माता ! लोग कहते हैं कि अमृत के लिए देवों और दैत्यों के संघ ने क्षीर समुद्र का मन्थन किया था। किन्तु मैं तो मानता हूँ कि तुम्हारे लिए मन्थन किया था। क्यों कि तुमको पाकर भगवान विजेता बने थे और नहीं मरने पर भी दैत्यों की हार ही हुई थी ॥ ६० ॥

क्वचित् सौख्यं दिव्यं क्वचिदपितु तद्दौःस्थ्यमतुलम्
क्वचिद् बुद्धेः काष्ठां क्वचिदपि तु तन्मान्यमतुलं
क्वचित्संपत्यं मे दिशसि तु तथाभावमपरं।
त्वदायं सर्वं तद्भवति मम कल्याणनिधये ॥६१॥

हे माता ! कहीं परम सुख है और कहीं दुःस्थिति है। कहीं बुद्धि की पराकाष्ठा है तो कहीं पर बुद्धि की मन्दता है। हे माँ ! मेरे लिए तुम्हारा यह सब कुछ कल्याणार्थ ही है॥ ६१ ॥

विधोः सारेणेदं छविजलधिसारेण विधिना
सरस्थाब्जानां ते परिमलसुसारेण रचितम् ।
मुखाब्जं मोदाब्धिं मृगमदसु काश्मीररचनं
पिधास्ये हार्देन मलमृदुलकञ्जेन मनसि ॥६२॥

हे माता ! केशर कस्तूरी से चर्चित आनन्द के समुद्र रूप तुम्हारे मुख कमल को ब्रह्माजी ने चन्द्रमा, शोभा के समुद्र तथा सरोवर में खिले कमलों के मनोहारी सुगन्ध के सारों से बनाया है। उसको

अपने निर्मल और कोमल हृदय कमल के द्वारा अपने मन में छिपा लूँगा ॥ ६२ ॥

कृपासिन्धोः सारच्छविजलधिसारः कुशलता
पयोब्धेर्या सारो द्युतिजलधिसारो निर्शिदिनम् ।
सुवात्सल्याब्धेर्वा रसजलधिसारो मृदुलता
पयोब्धेः सारो मे स्फुरतु हृदि सा केलिजलधेः ॥६३॥

हे माता ! कृपा शोभा मंगल कान्ति वात्सल्य रस कोमलता एवं लीला के समुद्रों की सार रूपा आप मेरे हृदय में निरन्तर स्फुरित हों (यही मेरी अभिलाषा है) ॥ ६३ ॥

विचार्य्यैवाद्राक्षं त्वमिव मम नान्ये हितकराः
समाहन्ते स्वार्थं तदपि बहुशक्ता न खलु ते ।
समर्था सर्वज्ञा सकल सुखदात्री गुणमयी
त्वमेवासि प्रष्ठाऽत इयमभिनिष्ठा त्वयि सदा ॥६४॥

हे माता ! विचार कर के देखता हूँ तो तुम्हारे समान मेरा हित करने वाला दूसरा कोई नहीं प्रतीत होता। हे माँ ! तुम्हारे सिवाय सभी स्वार्थ चाहने वाले हैं और शक्तिशाली भी नहीं हैं। आप समर्थ हैं, सर्वज्ञ सर्व सुखदायी हैं, सर्व गुण सम्पन्न हैं तथा प्रीतिकरी हैं, इससे मेरी निष्ठा सदा आप में ही रहती है ॥ ६४ ॥

उषः कालेऽदो यत्कुवलयललामत्वमतुलम ।
विहंगाना रावः कलकल इयं भानुशिशुता ।
मरुन्मन्दः शीतः सुरभिरपि संवाति शुभगे
मनोज्ञत्वं दिक्षुच्छरितमधुरापं शुभसरः ॥६५॥

पिकानां पाञ्चम्यं बहुतरविभासो विधुरपि
प्रसादः शान्तानां तवशुभसखीनां मनसि यः।
सुगुञ्जो गान्धर्वो मधुरमधुपानां सुमनसि
प्रवल्गः शाणानां करिकलभविस्फूर्जनमलम् ।।६६।।
रथाङ्गानां मेलो निजदयितया प्रीतिसहितः
सुकेकीनां केका विहरकलकुञ्जेषु कलिताः ।
कलाऽलेख्या द्वास्था प्रतिगृहमलं मङ्गलमयी
इदं सर्वं मातस्तव शुभ विमाताय भवति ।।६७।।

यह उषा काल, कमलों का अतुल सौन्दर्य, पक्षियों का कलरव, यह सूर्य की बाल्य अवस्था, शीतल मन्द तथा सुगन्धित शुभ पवन का चलना, दिशाओं का सौन्दर्य, सुन्दर और मधुर जल शाली सरोवर, कोकिलाओं का पंचम स्वर में कूजना, बहुत कान्ति मान चन्द्र, तुम्हारी शान्त मंगल मयी सखियों के मन की प्रसन्नता, फूलों में मधुर मधुपों का गन्धर्ववत् गुञ्जन, बच्चों का प्रवल्गन, हाथियों के बच्चों का खेल, प्रीति सहित अपनी स्त्रियों के साथ चक्रवाकों का मिलन, ललित विहार कुञ्जों में मयूरों की मधुर वाणियां, तथा, प्रति गृह के द्वारों में चित्रित मंगल कलाएं । हे माता! ये सब आपके सुप्रभात के लिए होते हैं।

।। ६५ ।। ६६ ।। ६७ ।।

नमो विश्वैश्वर्य्यै प्रणतहितसिद्धयायपि नमो
नमो नोलीशाय्य जगदमलदीप्त्यायपि नमः।
नमो मैथिल्यै ते मृदुलकलगात्र्यायपि नमो
नमः सर्वस्यै ते रघुवर महिष्यायपि नमः ।।६८।।

हे माता? विश्व की ऐश्वर्य रूपा तुमको नमस्कार हो। अपने दासों के हित के लिए सिद्धिरूपा आपको नमस्कार हो। नील साड़ी परिधाना आपको नमस्कार हो। जगत की निर्मल दीप्ति स्वरूपा आपको नमस्कार हो। मिथिला पति की कन्या आपको नमस्कार हो। कोमल सुन्दर शरीर वाली तुमको नमस्कार हो। सफल जगत् स्वरूपा आपको नमस्कार हो। अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्री रघुनाथ जी की प्रिया महारानी आपको नमस्कार हो॥ ६८॥

न लोके केचित्त्वत्करुणारहिता सिद्धिमगमन्
यतः सा ते दासी भृकुटिकुटिला भीतिसहिता।
अतोऽहं संयातस्तव सुशरणं सन्ततसुखं
दयासिन्धो! मातः कथमपि भवेयं तु दयितः॥६६॥

हे माता! इस संसार में आपकी कृपा से रहित कोई भी मनुष्य सिद्धि को प्राप्त नहीं हुए हैं। क्योंकि सिद्धि आपकी दासी सदा आपकी आज्ञा के आधीन रहती है। आपकी भृकुटि के जरासी टेढी होने पर भयभीत हो जाती है। अतः मैं भी आपकी शरण में आ गया हूँ जो शरण सदा सुख की देने वाली हैं। हे दयासिन्धु माता? किसी भी प्रकार मैं आपका प्रिय दास बन जाऊँगा॥ ६६॥

न वाञ्छामः सिद्धिं पुनरपि न बुद्धिं जननि हे
कवित्वं नो किञ्चिन्नहि सुलभसौख्यं जगति तत्।
प्रतिष्ठां लोकेषु श्रुतिषु कथितांस्तान्नहि गुणान्
परं वाञ्छामस्त्वां जनिमृतिहरां देवि शरणम्॥७०॥

हे माता मैं कोई सिद्धि की इच्छा नहीं करता हूं न बुद्धि की ही

कामना है। कवि बनने की थोडी भी इच्छा नहीं है। जगत् के सुलभ सुख भी नहीं चाहिए। न लोकों में प्रतिष्ठा की ही इच्छा है, न वेद में वर्णित गुणों की ही इच्छा है। हे माता! मैं जन्म मृत्यु को हरण करने वाली आपकी शरण मात्र ही चाहता हूं ॥ ७० ॥

उमायै सच्यै ते जलधितनयायै सुमतये
　　धरायै शान्त्यै ते विषनससुतायै च हृतये।
परायै क्षुद्रायै परमसुलभायै च गतय
　　नमो राधायै ते जनकतनयायै पुनरहो ॥७१॥

उमा, शची, (इन्द्राणी) जलधितनया (लक्ष्मी) सुमति धरा शान्ति विषनससुता हृति परा क्षुद्रा परम सुलभा गति तथा श्री राधिका इन सब रूपों वाली जगज्जननी जनकतनया श्री जानकी जी को नमस्कार है ॥ ७१ ॥

कुमार्य्यै श्यामायामपि नवलगौर्य्यै च जनये
　　नमो नेदोयस्यै पुनरपि सुभूत्याय मृतये।
नमो वृद्धयै प्रीत्यै सुखदनवनीत्यै तु कृतये
　　नमः सर्वावाप्त्यै धरणिसुखजायै च धृतये ॥७२॥

कुमारी श्यामा नवल गौरी जनि नेदीयसी सुभूति मृति वृद्धि प्रीति सुखद नवनीति कृति सर्वा वाति घृति रूपा धरणि सुखजा (भूमिनन्दिनी) को नमस्कार है ॥ ७२ ॥

विधुस्थो द्राक्षास्थः सरसिजगतो माणिकगतः
　　कलास्थः श्यामास्थो नवशुभशिशुस्थो मधुगतः।

पिकस्थः माकन्देक्ष मधुरपयस्था अधरजः
त्वजेषोत्सर्वांस्तांस्तव चरणरेणोर्मधुरिमा ॥७३॥

हे माता ? चद्रमा, द्राक्षा, कमल, माणिक, कला, श्यामा, नवीन शिशु (बालक) मधु कोकिल वाणी, माकन्द इक्षु (ईख) दूध तथा अधर इत्यदि में जो मधुरता है, इन सब मधुरताओं को आपकी चरण रेणु की मधुरता ने जीत लिया है ॥ ७३ ॥

हृदि ध्यायन्तो ये विधिशिवसुरा योगपथिका
महान्तो यां सन्तो बहुजनिषु तप्त्वा बहुतपः ।
लभन्ते नो स्वप्नेप्यति विमलमत्या कथमपि
सुमन्दा वाञ्छामस्तव च परिचर्यां चरणयोः ॥७४॥

हे माता ! ब्रह्मा शिव इत्यादि सुरगण, योगी गण तथा महान सन्त गण बहुत जन्मों में ध्यान, तप, तथा विमलज्ञान के द्वारा जिन आपके चरणों की सेवा को स्वप्न में भी नहीं पा सके, मैं आपके उन चरणों की सेवा को चाहता हूं ॥ ७४ ॥

कदा नीलाब्जाभेऽमृतरसमये कज्जलकले
ललामे लोकानां विधुवदमलाह्लादनपरे ।
विशाले शीलाब्धौ जनभयहरे नेत्रकमले
पिधास्ये सम्पश्यन् हृदयजसरोजे निशिदिवम् ॥७५॥

हे माता ! नील कमल के सदृश, अमृतरस मय, कज्जल युत श्याम वर्ण, ललाम, लोकों को चन्द्र के समान आनन्द देने वाले विशाल, शील के समुद्र तथा लोगों के भय को हरण करने वाले आपके दोनों नेत्र कमलों को निरन्तर देखता हुआ मैं कब अपने हृदय कमल में छिपा लूंगा ॥ ७५ ।

मुखांश किञ्चित्त्वम् विततरितवती देवि विधवे
तथवाम्भोजेभ्यः पदतललालात्वकणिकाम् ।
गजेन्द्रेभ्यः स्वल्पं निजमृदुगतांश करुणया
कवीन्द्रा एतेषां ददति निजकाव्येऽत उपमाम् ।।७६।।

हे देवी ! आपने कृपा कर अपने मुख शोभा का थोड़ा भाग तथा पदतल की लालिमा की कणिका मात्र कमलों को प्रदान की है और अपने मृदुगमन का स्पल्पांश गजेन्द्रों को दे दिया है। अत एव कवीन्द्र लोग निजकाव्य में इन्हीं की उपमा देते हैं ।। ७६ ।।

पराकाष्ठायां त्व त्रिभुवनगतानाञ्च महता–
मनन्तश्वर्येणामतिशयमधिक्रीडसि मुदा
ह्वयन्तेऽतो लोकाः स्थिरचरजनानां प्रियमिति
भवत्यन्वर्थस्त्वदविध सुमहतः स्वाह्वय इति ।।७७।।

हे माता त्रिभुवन गत महान् लोगों के अनन्त ऐश्वर्य की पराकाष्ठा (अन्तिममर्यादा) में तुम अच्छी तरह से खेलती हो, अतः लोग तुमको चराचर की श्री कहते हैं। हे माता! तुम्हारे सदृश महती व्यक्ति का नाम अन्वर्थ यथा नाम गुण होता है ।। ७७ ।।

नरीनृत्यन्तेऽमी विधिहरिहरा इङ्गितपरा
वरीवृत्यन्ते यां निजपरिमिते सीम्नि पतयः ।
जरीगृह्यन्ते तान् त्रिविधगतकालाश्च निखिलान्
परेशां सर्वेषां शरणमभिवांछामि जननीम् ।।७८।।

हे माता ! आपके इशारे पर ही ब्रह्मा विष्णु, महेश कठ पुतली की तरह नाचते हैं, समुद्र आज्ञानुसार वर्तते हैं और अपनी सीमा का

उल्लंघन नहीं करते तथा भूत, भविष्य, वर्तमान काल सम्पूर्ण रूपेण जीवों को ग्रहण करते हैं, अत एव सभी की जननी परमेश्वरी आपकी शरण को मैं चाहता हूं ।। ७८ ।।

दशास्यं हत्वापि श्रमनुपगतः सन् रघुपति-
रहत्वा नो शान्तिं दशशतमुखं देव्यलभत ।
तदा त्वं संजह्रे तमिति च कथा लोकविवृता
ह्यसक्तानां भारं वहति बहुपुण्यस्तव समः ।।७९।।

हे माता ! दश मुख वाले रावण के मारने में भगवान रघुनाथ जी ने बहुत परिश्रम किया फिर भी सहस्रमुख रक्तबीज के रहते इस पृथ्वी पर सुख शान्ति नहीं हो सकी अतः तुमने ही उस रक्तबीज को मारकर लोगों को सुखी किया । इस तरह से अशक्त जीवों के भरण पोषण के भार को आप समान रूप से वहन करती हैं ।। ७९ ।।

सुप्रीतिं यच्चक्रुस्त्वयि तु विपुलां राक्षसयुताः
सुखायासीत् ताभ्यो मृतिमुपगते राक्षसपतौ ।
विधातुः सौख्यार्थं महति बिहिता प्रीतिरतुला
न सख्यं सौपर्णं किलमधुजिताऽभूद् मधुजये ।।८०।।

हे माता ! लंका में रहते हुए त्रिजटादि राक्षस पुत्रियों के लिये राक्षस राज रावण के मरने पर आपने जो प्रीति पूर्वक सुखका विधान किया,सख्य का ऐसा निर्वाह तो मधु नामक राक्षस के जीतने में सहायक होने वाले गरुड जी को भी भगवान विष्णु से नहीं प्राप्त हुआ ।।८०।।

कुरंगाक्षि त्वं मां कुमति बहुलत्वान्न दयसे
दयालुत्वं क्व स्यात्कथय कथनीयोरुगुणके ।

जयन्ते लंकायाः कुणपवनितायामजनि यद्
महत्वं तत्रासीत मयि तु निखिलं क्षौद्रमतुलं ।।८१।।

हे मृगनयनी माँ! मेरी कुत्सित बुद्धि की बहुलता से आप मुझ पर दया नहीं करती हो। हे प्रशंसनीय गुण गण गरीयसी माँ! कहो आपकी वह दयालुता कहां है जो आपने जयन्त पर की थी तथा लंका की राक्षसियों पर की थी। मुझमें यदि अतुलनीय क्षुद्रता है तो उनमें कौन महानता थी ।। ८१ ।।

नप्रस्वा पित्रा वा सुखमलभन्मामोह सखितो
भगिन्या भ्रात्रा वा स्वजनसुतदारैरपि नहि।
नह्यन्यैर्देवैर्वा नहि शुभतीर्थेषु गमनैः
परं लब्धं त्वत्तो घट इव समुद्रै रनुगुणम् ।।८२।।

हे माता! इस संसार में मुझे माता पिता मित्र बहन भाई स्त्री पुत्र परिवार में किसी से भी सुख नहीं मिला न अन्य यजन एवं शुभतीर्थों की यात्रा में ही सुख मिला। किन्तु समुद्र से घटको परिपूर्ण जल प्राप्त होता है वैंसे आप से ही परिपूर्ण सुख मिला ।। ८२ ।।

महत्व मातुन्ते महितमहिमानोऽपि महता
प्रयासेन प्रेष्ठे! कथमपि न शक्ष्यन्ति मुनयः।
विदित्वेत्थं तथ्यं सफलयितुमेतन्निजवचः।
कृतायास क्षुद्रो ह्यपिन वचनीयत्वमयते ।।८३।।

हे माता! महा महिमाशाली मुनिलोग महान् महान् प्रयास करके भी तुम्हारी महिमाको मापने में समर्थ नहीं होते हैं। इस तथ्य को जानकर भी निज वाणी को सफल करने के लिए आपकी महिमा के वर्णन

में प्रयास करने वाला मैं क्यों न लोगों के अपवाद का पात्र होऊंगा ॥८३॥

न भक्तो नासक्तस्त्वयि मम रुचिर्नास्ति मनने
न पूजायां पाठ नहि च मनुजापे प्रकथने ।
नहि ध्याने ज्ञाने क्वचिदपि न तीर्थाटनविधौ
कथं नेष्येऽहोऽहं नवनलिननीलाक्षियुगले ॥८४॥

हे नवीन नील कमल के समान नेत्र युगल वाली माता ! मैं आपका भक्त नहीं हूँ । आपके चरणों में दृढ आसक्त नहीं हूं । मनन, पूजा, पाठ, मन्त्र जाप, गुणगान, ध्यान ज्ञान एवं तीर्थ यात्रा की विधि में भी रुचि नहीं हैं। मैं कैसे दिन बिताऊँ ? अभिप्राय यह कि कृपाकर के इन सब भक्ति के अंगों में मेरी रुचि हो ऐसी कृपा करिये ॥ ८४ ॥

भवाम्भोधौ मग्नः शमलगुरुभारेण भरितो
दुराशानक्राद्यै रतिशयितमग्नः पुनरहम् ।
न रज्जू नो नौर्वा न च सुदृढधीर्धीवररह
कथंकारं पारं तव पदमृते यामि जननि ॥८५॥

हे माता ! पाप रूपी भार से बोझिल मैं संसार रूपी समुद्र में डूबरहा हूं। कुत्सित आशाओं रूपी नक्रादि खैंच कर और अधिक डुबो रहे हैं, मेरे पास रस्सी नवका या बुद्धिमान केवट भी नहीं है, तब आपके चरण कमल के अतिरिक्त इस से पार करने वाला कौन है ॥ ८५ ॥

सुरश्लाघ्यायास्त्वत्प्रभवमिथिलाया भुवि च मां
विलोक्य स्वे धर्मे त्यज भवरुजाक्रान्तमपि नो ।

जनिस्थानस्थ केऽपि न जहति साधारणजना
पुनः किं त्वादृक् का किल जननि संत्यक्ष्यति वद ।।८६।।

हे माता ! सुरश्लाघ्य आपकी जन्म भूमि श्री मिथिला एवं आपके धर्म (सम्प्रदाय) में प्राप्त भवरोग ग्रस्त मुझको आप न त्यागें । क्यों कि अपनी जन्म भूमि के निवासी को साधारण पुरुष भी नहीं त्यागते हैं, तो आप जैसी महान कैसे त्यागेंगी ।। ८६ ।।

अमन्दान्तःप्रेम्णा पदकमलयुग्मं परिचरन्
वियोगज्वालातो ज्वलनिह कदा रोदिमि मुहुः ।
महर्तिः सङ्गेऽपि प्रतिजनमल भूधरतरून्
विपृच्छंस्त्वां मुग्धो जगति तव सीतेति च जपन् ।।८७।।

हे माता ! अत्यधिक अन्तः प्रेम से तुम्हारे दोनों चरण कमलों की परिचर्या की वियोग ज्वाला से जलता हुआ कब बारंबार रोदन करूंगा? महान् आर्त होकर प्रत्येक प्राणियों से पर्वतों से वृक्षों से आपके विषयमें पूछता हुआ तथा श्री सीता नाम को जपता हुआ मुग्ध होकर कब फिरा करूंगा ।। ८७ ।।

विधुं कञ्जं कुन्दं भ्रमर पटलीः कृष्ण भुजगान्
सुवर्णं कादम्बं स्वरकलपिकं हंसगमनम् ।
द्विपं मेघं विद्युद्गणमपि सुरम्भां च कनकम्
कदाऽनेष्यामि त्वां सकलमभिलक्ष्य स्मृति पथे।।८८।।

हे माता ! चन्द्रमा, कमल, कुन्द भ्रमर पंक्ति, काले सर्प, सुवर्ण, कदम्ब, मधुर स्वर वाली कोकिल, हंसगति, गज, मेघ, विद्युत्समूह, सुरम्य

कदली स्तम्भ तथा हेम इन सबको देखकर तुमको मैं कब स्मरण करूंगा ।। ८८ ।।

कदाहौ सिंहेत्वां विदुषि गवि मन्दे करिणि च
जले वायौ वह्नौ शुनि विपति भूमौ च गहने ।
गृहे नीचे देवे सकल भुवने सत्स्थापित तथा
विपश्यन् मोदेऽहं क्वचन नहि चेर्ष्यामितु ततः ।।८९।।

हे माता ! सर्प, सिंह, गाय, विद्वान्, मूर्ख, हस्तिनी जल, वायु, अग्नि, श्वान, आकाश, भूमि, वन, गृह, नीच, देव, सकल भुवन तथा सज्जन पुरुष इत्यादि समस्त पदार्थों में तुमको देखता हुआ मैं कब आनन्दित होऊंगा? और तुम सर्व में वसती हो यह समझकर किसी से भी इर्ष्या नहीं करूंगा ।। ८९ ।।

न पीताः पादापो नहि चरितमास्वदितमलम्
न गीता गाथा ते गमनमपि नो तीर्थपरकम् ।
अनैषीद् व्यर्थं यो भजनसुलभं जीवनमहो
जनन्याः दुःखाया जनिजननिमादृक् सतु जनः ।।९०।।

हे माता ! जिसने तुम्हारे चरणोदक का पान नहीं किया, तुम्हारे भोग लगे हुए पदार्थ का आस्वादन नहीं किया, तुम्हारी कथा को नहीं गाया, जनकपुर, अयोध्या चित्रकूट आदि तीर्थों में गमन नहीं किया, तथा भजन जिसमें सुलभ है ऐसे जीवन को व्यर्थ ही व्यतीत कर दिया, ऐसा मुझ जैसा मनुष्य अपनी माता को दुःख देने के लिए ही जन्म लेता है ।। ९० ।।

तवाक्तं कान्तारं सुरपुरपतीन्द्रं बहुतरं
वनायन्ते स्वर्गा सुबहु विभवास्त्वद् विरहिताः।
सुमन्दस्त्वद्भक्तः सुरपतिगुरुत्वन्तु लभते
कदापि त्वद्दम्यः सुपतिसुमनस्यत्पतितंरम् ॥६१॥

हे माता ! आप से युक्त वन भी सुरपुर हो जाता है, तथा आपसे रहित स्वर्ग भी वन तुल्य हो जाता है। आपका भक्त अत्यन्त मन्द भी देव गुरु (बृहस्पति) बन जाता है। तथा आपसे दमन किया हुआ जन भी स्वर्ग में श्रेष्ठ देवता बन जाता है ॥ ६१ ॥

निदेशे स्थातुन्ते तवसुखसुखित्वेऽप्यभिलषन्
त्वदर्थं पूर्णार्थे ! प्रतिजनि यतिष्ये प्रतिकलम्।
व्रतैस्तीर्थैर्जपैः श्रुतिविहितकृत्यैश्च विपुलैः
यथाशक्त्यल्पोऽहं बुधविदितया ते सुदयया ॥६२॥

हे माता विद्वान जिससे परिचित हैं ऐसी आपकी दया से अत्यल्प होते हुए भी मैं यथाशक्ति व्रत तीर्थ जप आदि अनेकानेक वेद विहित कर्म के द्वारा आपके आदेश में स्थित होने की एव आपकी प्रीति जिसमें हो उसीमें सुख मानने की इच्छा करता हुआ प्रत्येक जन्म की प्रत्येक पल में आपकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होऊंगा ॥ ६२ ॥

यदाङ्गे रंगे त्वं बहुनृपतिपुञ्जे त्ववतर-
स्तदाऽसौ द्रष्टुं त्वां विधिहरिशिवाखण्डलगणः।
स्वमात्मानं मेने निजनिजसुनेत्रैबहुतमम्
प्रहर्षं संयान्ति ह्यविकलकलाः प्राज्यकरणाः ॥६३॥

हे माता ! बहुत राजाओं की समुपस्थिति युक्त रङ्ग मण्डप में जब

आप पधारी थीं तब आपको देखकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा इन्द्रादिदेव समुदाय ने अपने–अपने सुनेत्रों के अनुसार स्वात्मा को धन्य माना था। सो उचित ही है बृहत साधन सम्पन्न अधिक हर्ष को प्राप्त होते ही हैं ।।६३।।

भयादिन्दुः सिन्धुर्विकृतगुणपुञ्जस्य सुतरां
क्षपायां क्षामत्वं समभिलभमानस्तु लनया ।
गुणाब्धेः सौख्याब्धेस्तव शुभमुखाब्जस्य जननि
अनिद्राणो दीनो भ्रमति बहुधा हन्त विमति ।।६४।।

हे जननी! विकृत गुणगणार्णव चन्द्रमा दिव्य गुण तथा आनन्द सिन्धु आपके शुभ मुख कमल की तुलना के भय से कृशता को प्राप्त हुआ निद्राविहीन दीन होकर प्रायः रात में ही आकाश में भ्रमण करता रहता है। ६४ ।।

सुशास्त्र्यां सत्यां वै त्वयि च भुवनानाम् भगवति
क्षुधाधिव्याधिस्थं कमपि भुवि कोणेकनृपतिम् ।
कथं याचे दीनं द्रविणरहितं याचनपरम्
विशुद्धोदे सिद्धे लवणमपि नो कोपि पिवति ।।६५।।

हे भगवति! लोकों का शासन (भरण पोषण) करने वाली आपके विद्यमान होते हुए मैं इन क्षुधा एवं आधि व्याधि में स्थित, दीन, द्रव्य हीन तथा अन्य से याचना करने वाले एक कोने के किसी राजा से क्यों याचना करूँ? क्योंकि विशुद्ध जल के विद्यमान होते हुए खारा जल कोई नहीं पीता है।। ६५ ।।

जगत्याः कर्त्रीत्वं भवसि खलु नैयायिकनये
क्रिया त्वत्तो नित्ये यदिति परमाणौ भवति मा ।
परब्रह्मासि त्वं श्रुतिमतमतीनां च विदुषां
त्वदेवैतत्सर्वं त्वमसि सकलं मे मतमिदम् ॥९६॥

हे माता! नैयायिकों के सिद्धान्तमें जगत् की कर्त्री तुम्ही हो, इसका कारण यह है कि उत्पत्ति विनाश शून्य अर्थात् नित्य परमाणुओं में क्रिया तुम्ही से होती है। वैदिक मतानुयायियों के मत में तुम्हीं परब्रह्म हो। मेरा मत तो यह है कि समस्त जगत् तुम्हीं से होता है और यह सब कुछ तुम्ही हो ॥ ९६ ॥

त्वदन्यं त्रातारं दिशि विदिशि वीक्षे न जननि
त्वघोघं पाप्मानं कथय कतिकालं न दयसे ।
यदि स्याद्दृष्टिस्ते मम कृतिविधौ पापजलधौ
न निस्तारो विस्तार परमदयाब्धिं किल बिना ॥९७॥

हे जननि! दिशाओं तथा विदिशाओं में आपके अतिरिक्त अन्य किसी भी रक्षक को नहीं देखता हूँ। हे माता! कहो कि पापों के समूह रूप मुझ पापी पर तुम कब तक दया न करोगी? हे माता! पाप समुद्र रूप मेरे कर्मों को यदि तुम देखोगी तो सुविस्तृत दया की समुद्र आपके बिना मेरा निस्तार होगा ही नहीं ॥ ९७ ॥

कृपालम्बी लम्बे कलकमललम्बौ तव करौ
दयाब्धी प्रेमाब्धी जनहितमहाब्धी गुणनिधी ।
प्रपन्नः प्रेमार्तः प्रतिपलमलं त्वामभिरुदन
दयार्द्रे स्नेहार्द्रे निरवधिकवात्सल्यजलधे ॥९८॥

हे माता ! आपकी कृपा का अवलम्ब लेने वाला मैं आपके सुन्दर कमलवत् लम्बायमान दोनों करों का अवलम्बन करता हूं। आपके वे दोनों कर कमल दया तथा प्रेम के समुद्र हैं, जन कल्याण के महोदधि हैं और गुणों के भण्डार हैं। हे दया और स्नेह से पूर्ण तथा निरवधिक वात्सल्य जलनिधि माता ! प्रतिपल प्रेम से आर्त होकर रोता हुआ मैं आपकी शरण में हूं ।। ९८ ।।

यदुक्तं लङ्कायामनिलशुभपुत्राय दयया
वधार्हः पापात्मा भवति करुणापात्रमिति च ।
तदेवाहं दीनो जननि किल पृच्छामि भवतीम्
तवाशेषादेशो ननु मदपवादश्च कथय ।।९९।।

हे जननी ! लका में पवन पुत्र श्री हनुमानजी से दया करके आपने जो कहा था कि वध योग्य पापी भी करुणा का पात्र होता है, हे माता ! वही मैं आपसे पूछता हूं आप कहें कि क्या आपके इस समस्त आदेश में मैं दीन अपवाद रूप हूं ? अर्थात् क्या आपका वह आदेश मुझ दीन को छोड़कर अन्यों के लिए ही है ।। ९९ ।।

क्व यामः किं कुर्मः किमपि शरणं शान्ति सुखदम्
न पश्यामो मातर्दिवि भुवि रसायामपि तथा ।
शरण्यौ पादाब्जौ प्रणतहितसिद्धौ तव यथा
ह्यतो मां पायास्त्वं जननि किल मा जहि प इह।।१००।।

हे माता ! कहाँ जाऊँ ? क्या करूं ? प्रणत जन के हित कर (शरणागत जन के कल्याण कारी) जैसे आपके दोनों चरण कमल हैं वैसा शान्ति और सुख का दाता रक्षक मैं स्वर्ग तथा पृथ्वी पर नहीं देख रहा

हूं । अतः हे जननी ! मेरी रक्षा करो, मुझे मत त्यागो ! ।। १०० ।।

निरवधिगुणसिन्धुं मातर सम्प्रणम्य
तदमलचरणाब्जप्रेमसिन्धावगाढुम् ।
स्तुतमिति शतकं ये श्रद्धया सम्पठन्ति
प्रणतहितमहाब्धि मैथिलीं ते लभन्ते ।।१०१।।

निरवधिक गुणों की सिन्धु स्वरूपा श्री मैथिली (जानकी माता) को प्रणाम करके उनके निर्मल चरण कमलों के प्रेम मिन्धु में अवगाहन करने के लिए स्तुति किए हुए इस मैथिली शतक का जो जन श्रद्धा से पाठ करेंगे वे प्रणत हित महोदधि रूपा उन श्री मैथिली जी को प्राप्त करेंगे ।। १०१ ।।

सुमिथिलेशसुता महिमात्मिकाम सुरसुरार्यकृतां शुभसंस्तुतिम् ।
पठति यो मनसा वचसा तथा भवति मातृपदाब्जरसप्लुतः।।१०२।।

इति श्रीरामानन्दपीठापरपर्याय श्रीसुरसुरानन्द द्वारपीठसंस्थापक
जगद्गुरुस्वामिश्रीसुरसुरानन्दाचार्यप्रणीतः
श्रीमैथिलीमहिमस्तवः समाप्तः

(श्री सुरसुरानन्द द्वारपीठ संस्थापक जगद्गुरु) श्री सुरसुरानन्दाचार्य निर्मित श्री मैथिली जी की महिमा स्वरूप इस शुभ स्तुति का जो मन से तथा वचन से पाठ करेगा वह जगज्जननी श्री मैथिली जी के चरण कमलों के प्रेम रस में निमग्न हो जायगा ।। १०२ ।।

इति पण्डितराजेश्वरव्याकरणवेदान्ततीर्थ महान्त श्रीकपिलदेवाचार्य प्रणीता
श्रीमैथिलीमहिमप्रभाटीका समाप्ता

———